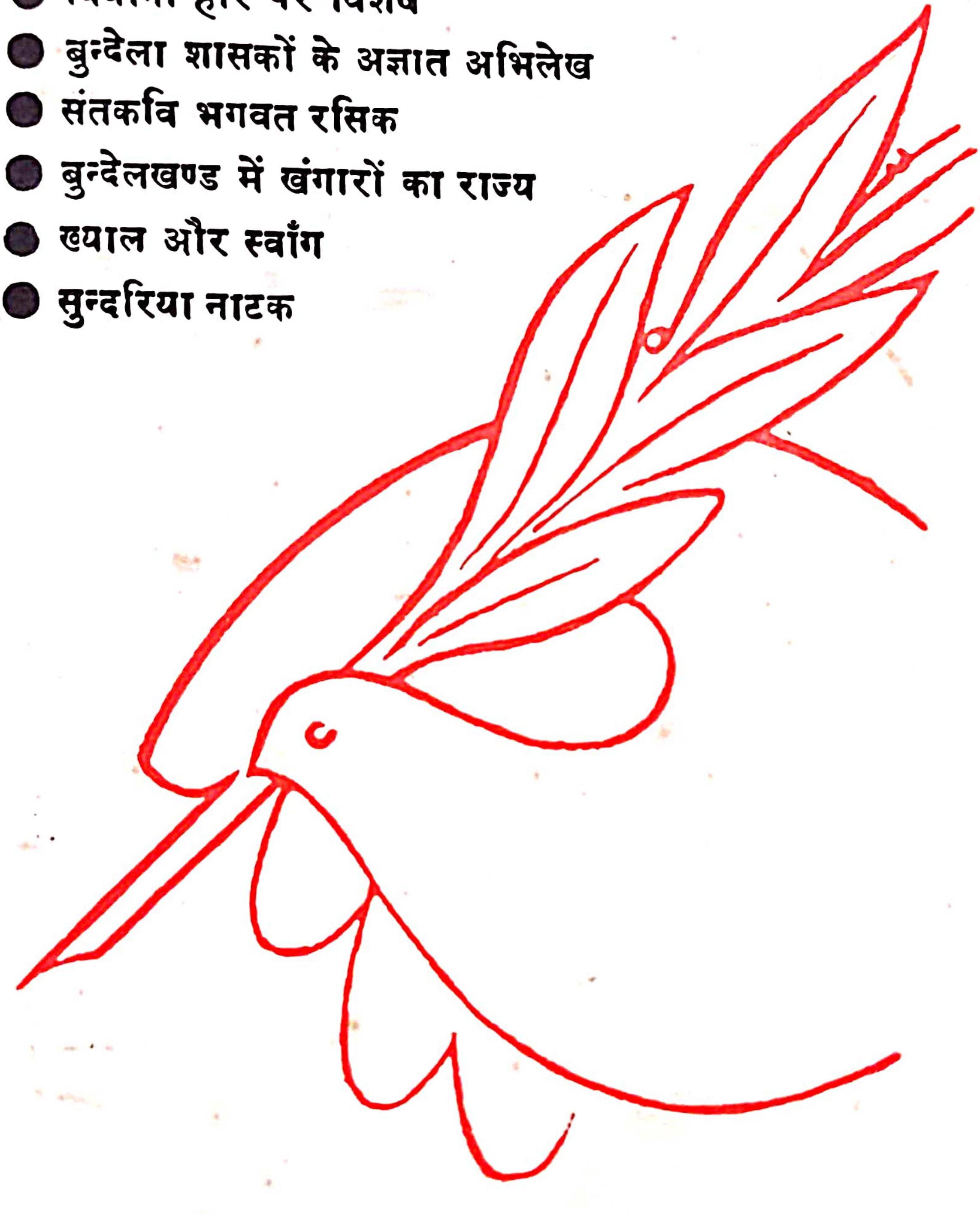
21

मामुलिया

शोध और सृजन की प्रमुख त्रैमासिकी

- वियोगी हरि पर विशेष
- बुन्देला शासकों के अज्ञात अभिलेख
- संतकवि भगवत रसिक
- बुन्देलखण्ड में खंगारों का राज्य
- ख्याल और स्वाँग
- सुन्दरिया नाटक



बुंदेलखंड साहित्य अकादमी प्रकाशन

महादेवी वर्मा
वियोगी हरि
गंगाशरण सिंह
ब्यौहार राजेन्द्र सिंह
द्वारकाप्रसाद मिश्र
रामनाथ गुप्त 'हरिदेव'
शारदा प्रसाद उदैनियां 'मनोज'
पं० रामेश्वर गुरु
के आकस्मिक निधन पर
श्रद्धा-सुमन समर्पित,

—अकादमी परिवार

मध्य प्रदेश शासन द्वारा ग्राम/जनपद पंचायतों, माध्यमिक/उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं जिला/विभागीय पुस्तकालय/वाचनालयों के लिए स्वीकृत

मामुलिया

अक-२१, सं० २०४५

●

दो आगामी विशेषांक

●

● बुन्देली लोक संस्कृति

● बुन्देलखण्ड का स्वतन्त्रता संग्राम

☐ सम्पादन : नर्मदाप्रसाद गुप्त

☐ सहयोग : वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक', कृष्ण कुमार हूँका, आशाराम त्रिपाठी, हरिसिंह घोष, वीरेन्द्र 'निर्झर', कृष्णबिहारी लाल पाण्डेय, बलभद्र तिवारी, सुरेन्द्र शर्मा, अयोध्या प्रसाद 'कुमुद'

☐ सम्पर्क एवं प्रकाशन : बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर ४७१००१ (म० प्र०)

☐ सहयोग राशि : वार्षिक—संस्थागत रु० ३०/- व्यक्तिगत रु० २५/-
आजीवन— रु० ५०१/-
संरक्षक—रु० २००१/-

☐ मुद्रक : देश सेवा प्रेस, १० सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद-३

अपने मन मानिक के लानें सुघर जौहरी चानें

○

● इतनो कँबे खाँ रै जानें, ऐसे हते फलाने

गाजई सी पर गई खेत में, सबरी फसल चौपट हो गई। एक सें एक बड़े रूख उपट गये। एक दिना महादेवी गईं तो दूसरे दिना वियोगी हरि। हिन्दी द्रोपदी की लाज बचाबे दौड़न वारे गंगा बाबू नईं रये। जबलपुर की खान के हीरा-मोती हते रामेसुर गुरू उर ब्योहार राजेन्द्र सिंह, सो अब न जानें काँ बिला गये। और का कइये, टकसाली कबित्तन के ढारबेवारे रामनाथ गुप्त 'हरिदेव' उर गीतन के सिंगारबेवारे शारदाप्रसाद उदैनिया 'मनोज' सोऊ चले गये। की सें का कइये ? को कीखाँ धीरज बँधाबै ? कछू दिना में जेई रै जानें कै ऐसे हते फलाने। आँधरी भक्ती सें कछू नईं बनत। कछू न सुहाबै तौ उनकी कविताई पढ़ै। घरी भर के लानें सही, मन तौ निरमल हो जात। मन की मुनइयाँ उड़न लगत। पंखन में ताकत आ जाबे सें मजबूत हो जात। मन की मजबूती और निरमल मन की मजबूती लोक के कल्यान के लानें भौतई जरूरी होत।

● मेल-मिलापन कौ का कानें, नैनन देख जुड़ानें

अबै पदमाकर-समारोह, आल्हा-संगोष्ठी और साहित्य-समागम भओ। बड़े-बड़े लोग हते। दिमागदार और नामबर। बड़ी-बड़ी बातें भईं। कोऊ नें कई कै पदमाकर कबि तौ भाट हतो, भाटगिरी करत रओ। कोऊ नें कई कै पदमाकर तौ भौत बड़ो कबि हतो, ईसें उनखाँ सागर-बाँदा औ बुंदेलखंड जैसी छोटी जगाँ सें नईं जोड़ो चइये। बड़े-बड़े सवाल उठ रये कै कौनऊँ कबि भाट हतो, बाम्हन हतो कै चमरा हतो। अब जौ देखें चइये। ठीकई आय, बड़े लोग अब जेई देख हैं। बड़ो कबि हो जाय, तौ उनखाँ जनमभूम सें, ऊकी संस्कृति सें, ऊकी समाज सें जोड़बे सें बौ कऊँ छोटो न होन लगै। ईसें अब कबि खाँ उतै की समाज सें हटा कें देस औ सिंसार की दूरबीन सें देखबौ जरूरी आय। मेल-मिलाप सोऊ बड़े मंचन पै होय, जैसें कौनऊँ 'यूनी-

वरसिटी' को हाल, कौनऊँ बड़ो 'भवन', जीसें छोटे आदमी न पींच जायँ। काये सें कै वे इत्ती बड़ी-बड़ी बातें का समझें। समाज खों बदलनें है, लोगन के भेद-भाव मिटाउनें है, जे सब उनई के मतलब की आयँ, पै उनसें मेल-मिलाप हू है तो बड़े-बड़े छोटे न हो जैहैं। येई सें साहित्य की बातें बड़े-बड़े लोगन के बीच बड़े-बड़े भौनन में होतीं। ऐसे मेल-मिलापन की का कइये, आंखन को सुख आय। ई जमाने में नैना जुड़ा जायँ, तो समझो कै अच्छो मेला हतो, बड़ो समारोह हतो। काये सें कै ऊ में कछू तै होबो तो सरगनसैनी पै चढ़बो आय।

● **एक-एक दियरा के बल पै हुलस दिबारी गानें**

दिवारी को हर दिया कीमती होत। ऊ के बिना अमावस को अँधयारो ऐसो गसन गसत कै छूटबो मुस्किल हो जात। ईसें ई लड़ाई में एकजुट होबो भौत जरूरी होत। लड़ाई छोटी होय चयँ बड़ी, जूझनवारे एक होकें जूझें तो जीतई हासिल होत। जौ बुंदेलखंड ऐई सें पिछड़ गओ कै हम एक नईं रये। हमायी साहित्य-सम्पदा अँधयारे में डरी, हजारन हाँतलिखी पोथीं इतै-उतै हर घरें हतीं। उनके छपवे को कौनऊँ इंतजाम नइयाँ। लोगन में बेंचन को लोभ सोऊ सवार हो गओ, जीसें वे बिक-बिक कें बाहर जा रईं। को है उनको रखवैया? बड़े-बड़े ऐई में बिधे रात। उननें कई कै ई पोथी में नीनी चित्रकारी लिखी, तो अस्सी हजार लग गये। अब जौ गुनाभाग भओ कै धीरें-धीरें सब बेंच डारो। ई तरा सें ई जनपद की पुरानी चीजवस्तें सब बिला गयीं, उर धीरें-धीरें सब बिला जैहैं। पुराने लोकगीत, लोककथाएँ, कानियाँ-कहाउतें सब। सिनेमा, टी० वी० के चलन सें गावे वारीं सोऊ किनारो काट रईं। 'मामुलिया' चिल्ला-चिल्ला कें कै रई कै जित्ती जैसी जो साहित्य-संपदा बची है, ऊखाँ एक-एक करकें बचाओ। एक-एक की रोसनी सें गाँवभर की दिवारी होत। मन तबई हुलस-हुलस दिबारी गाहै।

● **तन-तन करकें जुरें खजानो बुंदेली खाँ चानें**

कनूकन-कनूकन ढेर लगत। एक-एक रुपइया सें लखूरो होत। दो लाख रुपइयन की जरूरत है बुंदेली की पोथियन खों छपबे के लानें। लोकगीतन, लोककानियाँ, ईसुरी की फागन, इन सबके सही रूप में छपबे को समैया आ गओ। कित्तो साहित्य इतै-उतै बिलखत, पै कोऊ खाँ तनकऊ दया नईं आउत। इत्ते कठोर हो रये। घरीं टल रईं। एक घरी खिसकत, फिर नईं पलटत। अब तो परबी आ गयी। कसम आय ई धरती की कै ई काम की

चिन्ता करनै। जितनो बन पड़े सो ईके लानें 'सुरक्षित कोष' खाँ भेजनै। एक सें लगाइत एक लाख तक। दो लाख स्टेट बैंक में जमा हो जैहैं उर ऊसें जो सालाना ब्याज करीबन बाईस हजार आहै, ऊसें पोथीं छपहैं। सब कोऊ आपकी जै बोलहै। मनीआर्डर उर बैंक ड्राफ्ट (स्टेट बैंक कोड नं० ०३४७) अकादमी के नाम जरूर भेजबी। पता आय—बुंदेलखंड साहित्य अकादमी, छतरपुर—४७१००१, म० प्र०।

ई सहयोग के लानें हम रिनियाँ रैहैं। अगर तनकऊ बुरो लगै तो हमें माफ करियो। जै राम जी की।

●

अनासक्त साधक वियोगी हरि

—भगवतदत्त शिशु

श्री वियोगी हरि का नाम-स्मरण ही ऐसा प्रतीत होता है, जैसे देवात्मा हिमालय अथवा पुण्य सलिला गंगा का या किसी सर्व-हितात्मा तीर्थ का स्तवन कर रहे हैं। सन्त मूर्ति वियोगी हरि का जीवन उस सन्त और उस तरुवर के समान था, जो परहित के लिए ही फूलता-फलता है। वे मान-सम्मान की इच्छा किये बिना सरिता की तरह जनहिताय प्रवाहित रहते हैं।

वियोगी हरि एक ऐसा विराट् व्यक्तित्व था जिसमें साहित्य, समाज-सेवा और गांधी-युग का दर्शन होता था। ब्रजभाषा का वह मूर्द्धन्य कवि था, जिसने उसमें वेद, शास्त्र और भगवान् कृष्ण की माधुरी का रस-पान किया था और वीर-रस का निर्झर उसके रोम-रोम से निःसृत हुआ था।

हिन्दी के ऐसे मनीषी का जब युगपुरुष गांधी से साक्षात् हुआ तो उसकी जीवनधारा ही बदल गयी और उसे प्रतीत हुआ, मानो बापू उनसे कह रहे हैं—"वियोगी हरि अब तुम उस साहित्य को भूल कर नये साहित्य का सृजन करो जिससे समाज का हित हो। हरिजन सेवा के कार्य में मन लगाओ, तुम्हें सुख मिलेगा। और हाँ, आज आश्रम में टट्टी सफाई का दिन है। तुम भी मेरे साथ सफाई करो।"

द्विवेदी कुल में जन्मे वियोगी हरि अपने पुराने संस्कारों को तोड़कर महात्मा जी के साथ टट्टी सफाई में लग गये। उनकी इस कार्य-निष्ठा को देखकर बापू ने कहा—"वियोगी हरि, लगता है कि सेवा-धर्म तुम्हारा पूर्व संस्कार है। तुमने तो यह कार्य मुझसे भी अच्छा किया है।" उस महापुरुष की कसौटी पर यह कंचन इतना खरा उतरा कि वह गांधी परिवार का दीप्तिमान् नक्षत्र बनकर चमकने लगा।

ऐसा ही एक प्रसंग है। बापू वाइसराय से मिलने जा रहे थे। कार तक पहुँचने के लिए कुछ पैदल चलना पड़ता था। रास्ते में दिल्ली की हरिजन

उद्योगशाला के छात्र लौकी छील रहे थे। बापू को लगा कि विद्यार्थी सब्जी ठीक नहीं छील रहे हैं। वे खड़े हो गये और उन्होंने अपने सेक्रेट्री महादेव भाई से कहा—"महादेव, वाइसराय से पाँच मिनट आगे का समय माँग लो।"

महादेव भाई शायद मन में कुछ झुंझलाये, पर कहा कुछ नहीं। जब तक वे फोन पर समय माँगने गये तब तक बापू ने स्वयं अपने हाथ से उन्हें सब्जी काटना सिखाया। तभी उन्होंने हरि जी से कहा था—"देखो हरि जी, तुम स्वयं विद्यार्थियों के साथ यह कार्य किया करो। तुम्हारे साथ रहने से इन्हें इस कार्य में रस आयेगा।" वियोगी हरि उस उद्योगशाला के आचार्य थे। यह संस्था बापू की प्रेरणा से ही स्थापित हुई थी।

बापू छोटी-से-छोटी बातों पर गहराई से ध्यान देते थे। एक बार महात्मा जी हरिजन उद्योगशाला में ठहरे थे। दो अक्टूबर का दिन था। बापू ने हरिजनों को बुलाकर पूछा—"हरि जी, उद्योगशाला के विद्यार्थियों का आटा कहाँ पिसवाते हो?" हरि जी ने कहा—"बापू, हमारे यहाँ दस चक्कियाँ हैं। विद्यार्थी स्वयं सवेरे ५-३० से ६-३० तक चक्की चलाते हैं। और एक विद्यार्थी एक सेर गेहूँ पीसता है।" बापू ने कहा—"तो ऐसा करो, आज मैं भी विद्यार्थियों के साथ चक्की चलाऊँगा। जानते हो मेरा जन्म-दिन है। जमनालाल बजाज को भी बुलाओ। वे भी आज सबके साथ चक्की चलायेंगे।"

सभी लोग आ गये। एक चक्की पर बापू और वियोगी हरि जी थे। दूसरी पर जमनालाल जी बजाज तथा शंकरराव देव थे। शेष आठ चक्कियों पर विद्यार्थी भजन गा रहे थे और साथ ही, चक्कियाँ भी चला रहे थे। उस समय लेखक भी चक्की चलाता जा रहा था और सोच रहा था कि कबीर भी करघे पर बैठकर इसी प्रकार कपड़ा बुनता होगा और अपने साईं के दर्शन करता होगा।

उसी दिन विद्यार्थियों की सामूहिक कताई में शामिल हुए थे—बापू, सरदार पटेल, राजेन्द्र बाबू, डॉ० पट्टाभि सीतारमैया, शंकरराव देव, जमनालाल बजाज, खान अब्दुल गफ्फार खाँ, ब्रजकृष्ण चाँदीवाला आदि अनेक राजनेता तथा रचनात्मक कार्यकर्मी। इस व्यवस्था को देखकर ही बापू ने कहा था—"हरि जी, चरखे से ही अस्पृश्यता नष्ट होगी।" खान साहब ने कहा था—"वियोगी जी, बापू के इस कार्य को हमारे पेशावर में भी चालू करो, ताकि इन्सान अपने को समझने के काबिल बन सकें।" उसी समय बापू ने एक विद्यार्थी से पूछा था—"क्यों, तुम्हारे शिक्षक भी चक्की और चर्खा चलाते हैं।"

छात्र ने अपनी हरियाणा की बोली में कहा—"बापू जी ! मास्टर तो चक्की को न चलावे से पर पंडित जी तो रोज पीसें से।" हरि जी को छात्र पंडित जी भी कहते थे। बापू ने कहा—"हरि जी ! प्रार्थना, चक्की चलाना, और चर्खा कताई में तो शिक्षकों का भी योगदान होना चाहिए। पर ये दबाव से नहीं बल्कि स्वेच्छा से।"

शाम को हरिजन उद्योगशाला में प्रार्थना हुई। प्रार्थना के पश्चात् बापू का प्रवचन हुआ। प्रवचन के बाद बापू ने विद्यार्थियों से कहा—"समझ लो, वियोगी हरि यहाँ नहीं हैं। यदि तुम्हें यहाँ कोई तकलीफ है तो उसे साफ-साफ कहो। भय को अपने भीतर से निकाल दो। भय का अर्थ है मृत्यु और निर्भयता का अर्थ है मुक्ति। प्रह्लाद भी तुम्हारी ही तरह बालक था, पर वह पिता के सम्मुख सत्य को अपनाये रहा।"

तभी एक विद्यार्थी ने उठकर कहा—"बाप्पू जी, पंडित जी तो हमने म्हारे माँ-बाप से भी घना प्यार करें सें। जो देख-रेख म्हारी पंडित जी करें सें वो तो म्हारे घर में भी को ना होवे।"

यह था गांधी जी का अपना और अपने परिवार का जीवन-दर्शन जिसे युग-पुरुष पग-पग पर परखता था। इससे वियोगी हरि की साधना का क्षेत्र विस्तृत होता था और वह दिन-प्रतिदिन इस साधना से गांधी के सत्य को अपने आध्यात्मिक जीवन में पूरी-पूरी तरह उतार रहा था। उसके स्फटिक-से जीवन में कहीं भी कथनी और करनी में भेद नहीं रह गया था—

ना कोई ऊँचा ना कोई नीचा
ना कोई साहू ना कोई डाकू, ईश्वर के सब पूत रे।

उनकी ये पंक्तियाँ उनके अन्तस्तल की उज्ज्वलता को अत्यन्त स्पष्ट करती हैं। उनके हृदय में सबके लिए समभाव था। इस प्रश्न से उनके स्नेह-भरे अन्तस्तल के दर्शन कीजिये।

दिन ढल गया था, कुछ-कुछ अँधेरा हो चला था। भिण्ड का एक छोटा-सा पुरवा। हरि जी अपनी मण्डली सहित यहाँ ठहरे थे। शाम को प्रार्थना हुई थी, भजन-कीर्तन हुआ था और सौ-दो सौ गाँव वासियों के बीच हरि जी का प्रवचन हुआ था।

प्रवचन में उन्होंने कहा था—"आज हमारे भाई कुछ बहक गये हैं। पर इसका यह अर्थ नहीं कि हम उन्हें बदमाश या डाकू जैसे नामों से सम्बोधित करें। इन सम्बोधनों से तो उनमें क्रूरता ही जागती है। हमारा धर्म है कि

हम उन्हें प्यार से, मुहब्बत से जीतें और उन्हें गले लगायें। मैं उन भाइयों से भी कहूँगा कि वे भी शस्त्र-बल को छोड़कर अपने भीतर स्नेह-बल अर्जित करें जिससे उनका और समाज का कल्याण हो।'

जब वे सोने लगे, तब एक आदमी उनके पास आकर खड़ा हो गया। हरि जी ने समझा कि कोई कार्यकर्ता है। उन्होंने उसे बैठने को कहा, पर वह बैठा नहीं। खड़े-खड़े ही उसने कहा—'महाराज, आज आपने हमें भाई कह-कर पुकारा है। हम भी प्यार के भूखे हैं, पर किसी कारणवश गलत रास्ते पर आ गये हैं। हम तो ये लोहा आज ही फेंक दें, पर अब हमें समाज और शासन दोनों ही क्रोध से देखते हैं।' आगन्तुक ने एक थैली हरि जी के चरणों में रख दी और कहा—'महाराज, इसे भले काम में लगा देना।' और वह व्यक्ति चरण छूकर चला गया। लोगों ने बताया—'हरि जी महाराज, यह इस क्षेत्र का प्रसिद्ध डाकू है। इसका नाम है लाखन। इसके भय से तो भिण्ड-मुरैना का जंगल भी काँपता है।'

यह यात्रा वियोगी हरि जी ने ऊपर लिखी पंक्तियों को सामने रखकर उस समय की थी, जब डॉ० काटजू मध्य-प्रदेश के मुख्य मंत्री थे। ऊषा अभी आकाश-मण्डल से पूरी तरह नहीं उतरी थी। मार्ग कुछ अरुण और कुछ तम मिश्रित था। ऐसे में सर्वोदयी साधक विनोबा भावे पंजाब के फिरोजपुर की ओर अपनी मण्डली सहित चले जा रहे थे। इस पद-यात्रा में हरि जी भी साथ थे। शायद हरिजन सेवक संघ की किसी समस्या को लेकर वे गये थे। वे बाबा से कुछ पीछे थे।

बाबा चलते-चलते खड़े हो गये और पूछा—वियोगी हरि कहाँ हैं। किसी ने कहा था, कि वे पीछे आ रहे हैं। सभी ने देखा बाबा वहीं खेत में बैठ गये हैं। सभी ने बाबा का अनुसरण किया और वे भी सब खेत में ढेलों में बैठ गये। तब तक हरि जी भी वहाँ आ गये। बाबा ने उन्हें अपने पास बैठने को कहा। हरि जी बाबा के सामने बड़े ढेले पर बैठ गये।

बाबा ने कहा था—'हरि जी, आपकी विनय-पत्रिका की हरितोपिणी टीका मैंने देखी है। उसके विश्लेषणात्मक भावों का मुझ पर प्रभाव पड़ा है। मेरे विचार से रामचरितमानस का 'रा' और विनय-पत्रिका का 'म' ही तुलसी का 'राम' है।'

हरि जी ने कहा था—'बाबा, रामचरितमानस तुलसी का हृदय है और विनय-पत्रिका मस्तिष्क है। तुलसी ज्ञान और भक्ति की साक्षात् मूर्ति हैं।'

बाबा कुछ और गहरे उतरे और पूछा—'पत्रिका के किस पद ने हरि जी आपको भावविभोर किया है।' भक्तिमूर्ति वियोगी हरि ने तुलसी के मान-सरोवर से एक मोती निकाला और बाबा से कहा—

अब लौं नसानी अब न नसैहों।
राम कृपा भवनिसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहों।'

इस पद का अर्थ करते-करते अर्थकर्ता स्वयं पुलकित हो उठे और बाबा की दाढ़ी आँसुओं से भीग गयी और खेत में बैठी भक्त-मण्डली भी भक्ति-रस में डूब गयी। बाबा मस्ती में गुनगुना रहे थे—'अब लौं नसानी अब न नसैहों।'

इस रस से बाहर निकलकर बाबा ने कहा था—'वियोगी जी निराकारी सन्तों के विषय में आपकी कैसी भावना है।'

'बाबा, सन्तों का वह घाट ही निराला है जिस पर खड़े होकर कबीर, दादू, नानक, मीरा, रज्जब और शेख फरीद अपने साईं को निहारते रहते हैं। इन्हीं सन्तों के घर में इन्हीं की सूनी सेज पर वह परगट हो जाता है—

सब घर मेरा सांईया, सूनी सेज न कोय,
बलिहारी वा घर की, जा घर परगट होय।'

सब ने देखा प्रत्यूषा भी उस रस-सिन्धु में अवगाहन कर रही है। अपना मौन भंग कर प्रकृति भी सन्तों की वाणी का रस चख रही थी।

'हरि जी 'विनय-पत्रिका' की 'हरितोषिणी' टीका की तरह एक सन्त-वाणी का संग्रह भी आप कर दें, तो भक्तों का बड़ा लाभ होगा।' बाबा के इस विचार का पालन हरि जी ने किया। सन्तों की सूनी सेज पर बैठकर भारत के सन्तों की वाणी का संकलन 'संत-सुधा सार' नाम से किया। इस ग्रन्थ की भूमिका बाबा ने बड़े भक्ति भाव से लिखी। यह संकलन हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है।

एक बार हरि जी किसी कार्य से सेगाँव बापू से मिलने गये थे। बापू के पास जयप्रकाश नारायण की पत्नी प्रभावती भी बैठी थीं। वे हरि जी को प्रणाम करके उठने लगीं, तो बापू ने कहा—'प्रभा, बैठो, हरि जी की कोई ऐसी समस्या नहीं होती जिसे दूसरों से छिपाया जाये। ऐसी समस्या लेकर तो राजनैतिक भाई ही आते हैं। रचनात्मक कार्यकर्ता की समस्या तो खुली पुस्तक के समान है।'

बातचीत के पश्चात् बापू ने कहा—'हरि जी, ये प्रभावती सन्तों के विषय में पढ़ना चाहती हैं। मुझे भला सन्तों का ज्ञान कहाँ? हाँ, तुम इसे पढ़ा दिया करो।' हरि जी ने कहा—'बापू, पर प्रभा बहन सेवाग्राम कहाँ छोड़ेंगी और मैं दिल्ली नहीं छोड़ूँगा।'

बापू ने कहा—'ये तो हैं।' सभी मौन थे। तभी बापू खिलखिलाकर हँसे और बोले—'तुम दोनों की समस्या मैंने सुलझा दी। ये तुम्हें यहाँ से सन्तों के सम्बन्ध में अपने प्रश्न और वाणियाँ तुम्हें लिखकर भेजा करेंगी और तुम उनके उत्तर लिखकर इसे भेज दिया करो। ठीक है न?" शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों ने ही यह आज्ञा मान ली। और तभी प्रभा से कहा—'देखो' मैंने तुम्हें कितना योग्य शिक्षक दिया है।' और फिर खिलखिलाकर हँस पड़े।

पत्राचार पाठ्यक्रम बापू ने हरि जी और प्रभावती बहिन से प्रारम्भ किया था। वे प्रतिसप्ताह पाठ्यक्रम के अनुसार अपना पाठ लिखतीं और हरि जी उसका उत्तर लिखकर भेजा करते थे। यह क्रम लगभग एक वर्ष चला था।

एक बार जयप्रकाश जी हरि जी के यहाँ ठहरे थे। साथ में प्रभावती जी भी थीं। प्रभावती जी ने हरि जी के चरण छुए और जयप्रकाश जी से कहा—'ये मेरे गुरु हैं। मैंने इनसे पत्राचार के माध्यम से सन्त-वाणी पढ़ी है।'

हरि जी का जीवन सन्तों की परम्परा के अनुसार अनासक्त था। अखिल भारतीय हरिजन-सेवक-संघ का निर्माण वियोगी हरि जी ने पाँच-पाँच, छह-छह घण्टे कड़ी धूप में खड़े रहकर कराया था। वहाँ की एक-एक ईंट पर वियोगी हरि का नाम लिखा है। वहाँ का एक-एक कण हरि जी की स्मृति में आज भी दुःखी है। किन्तु जब हरि जी ने उस कर्म-भूमि को छोड़ा, तो ऐसे छोड़ दिया जैसे साँप केंचुली को छोड़ देता है। उन्होंने कभी पीछे मुड़-कर देखा तक नहीं। यही नहीं, अपने पीछे संस्था में इतना धन छोड़ दिया जिससे संस्था के उत्तराधिकारियों को कहीं माँगने न जाना पड़े। ऐसी अनासक्ति भला सन्तों के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र मिलेगी?

सन्त-महात्मा जन्मभूमि या जाति की परिधि में नहीं बँधते। पर जब कभी वियोगी हरि भावावेश में आते तो भगवान् कृष्ण की तरह कह उठते थे—'ऊधो मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।' और फिर बुन्देलखण्ड के गौरव का,

वहाँ की गरीबी का, वहाँ की परम्पराओं और जन-जीवन का चित्र इतना सुन्दर खींचते कि लगता श्रोता बुन्देलखण्ड की वीर और पावनभूमि पर विचरण कर रहा है। वहाँ के भोजन का जब वे वर्णन करते तो लगता कि कितना स्वाद भरा होगा उन व्यञ्जनों में जिसका बखान ये कर रहे हैं। वहाँ की सम्पन्नता का चित्र यह पंक्ति कहकर खींचते—

'महुवा, मेवा, बेर कलेवा, गुलगुच बड़ी मिठाई।'

यही नहीं, जीवन की असारता का चित्रण भी वे ईसुरी की फाग की पंक्ति के माध्यम से यों करते थे—

'बखरी रहियत हैं भारे की, बिना कुची तारे की।'

श्री हरि जी जब राज-धर्म का वर्णन करते तो कहते –'यदि इस धर्म का राजा पालन करे तो उसके राज पर कभी विपत्ति नहीं आ सकती।' इसे वे महाराज छत्रसाल के शब्दों में प्रकट करते हैं—

रैय्यत सब राजी रहै, ताजी रहै सिपाय,
छत्रसाल ता राज को, बाल न बाँको जाय।

यह था राज-धर्म और राज-नीति की मर्यादा। कभी-कभी तो ये गठेवरा महाराज छत्रसाल की वीरगाथा और कजरियों के हत्यारे कुण्ड की गाथा में इतने डूब जाते कि लगने लगता था कि इस अनासक्त योगी में कितनी आसक्ति है—जन्मभूमि के प्रति।

बुन्देलखण्ड की रियासत छतरपुर में ६३ वर्ष पूर्व द्विवेदी परिवार में जन्मा हरिप्रसाद द्विवेदी साहित्य-क्षेत्र में अवतरित हुआ था। अपने गुरु-बुन्देलखण्ड की मीरा कमल कुमारी जू (युगला प्रिया) के गोलोकवास पर अपना नाम वियोगी हरि रख लिया था। उन्हें कोई पंडित जी कहता, कोई हरि जी महाराज कहता, कोई वियोगी हरि, कोई गुरु जी और कोई महाराज कहकर ही सम्बोधन करते थे।

गांधी-युग का अपरिग्रही सन्त, अनासक्त साधक, हिन्दी साहित्य का मूर्द्धन्य साहित्यकार, सुप्रसिद्ध समाजसेवी, हिन्दी, संस्कृत, इंगलिश, गुजराती, मराठी तथा बँगला भाषा का विद्वान्। खाट पर लेटा था। अचानक उठकर बैठ गया और पद्मासन लगाकर भगवान् बुद्ध की मुद्रा में ध्यानस्थ हो गया। प्राणों को नासिका तक ही ले जाने पाये थे कि जीव, देह से मुक्त हो गया। उस समय उस योगी के मुख पर शान्ति विराज रही थी और देह से

झर रही थी कान्ति। उस बालब्रह्मचारी के अन्तिम समय में न तो कोई व्याकुलता थी और न थी किसी प्रकार की तड़पन।

उसने तो उस पावन वेला में कबीर के समान अपनी चादर को बिना मैला किये ज्यों-की-त्यों रख दिया। स्वेच्छा से प्रयाण करते समय उस दिव्यात्मा के चरणों में लेखक ने अपने भाग्य को कितनी ही बार सराहा। और ये पंक्ति अश्रुभरी आँखों से गुनगुनाता रहा—

ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।

—एफ-१३/२, मॉडल टाउन, दिल्ली

श्री वियोगी हरि
एक पावन जीवन-यात्रा

—श्रीनिवास शुक्ल

⊙

बुन्देलखण्ड की सघन-वनाच्छादित और पहाड़ी भूमि में एक ऐसे स्रोत का उद्गम हुआ जिसके प्रवाह ने पतित पावन तीर्थ-स्थल बनने का अहंकार तो नहीं पाला, किन्तु हर घाट से दुत्कारे हुए युग-युग से प्यासे असंख्य कण्ठों को सींचने वाला घाट वह अवश्य बन सका। इस बात का समाधान उसे भले ही रहा हो, न रहा हो किन्तु घाट पर आते-जाते लोगों को तो निश्चित रूप से ऐसा समाधान हुआ है। अनायास उगने वाले उस ऐसे बीज का अंकुरण इस धरती पर हुआ। जिसने वृक्षाकार होने पर परम्परा की पगडंडियों पर प्रताड़ित और हारी-थकी मानसिकता-ग्रसित पंथियों को प्रेम और ममता की छाया दी, जिसने उनकी चिरकालीन घुटन को अस्त-निरस्त करते हुए उन्हें अपनी करुणापूर्ण आश्वस्ति की गोद दी और उन्हें मुक्त रूप से साँस लेने के सुनहरे क्षण दिये, जिसने घृणा और द्वेष से प्रदूषित वायु को सेवा और समर्पण से परिष्कृत और सुगंधायित किया। वह स्रोत, वह अंकुर निस्पृह लोक-सेवा निष्काम साहित्य-सेवा का केन्द्र-बिन्दु था। वह था वियोगी हरि जिसका जन्म एक निर्धन ब्राह्मण कुल में सम्वत् १९५२ की रामनवमी के पावन दिन छतरपुर में हुआ था। ६-७ माह की अवस्था में पिता का स्वर्गवास हो गया। लाड़-प्यार में पालन-पोषण किया नाना पंडित अच्छेलाल तिवारी ने। पं० अच्छेलाल तिवारी जी प्रसिद्ध सितार-वादक थे। रियासत छतरपुर से उन्हें १५/— रु० मासिक वृत्ति मिलती थी। बस यही परिवार की आय थी। इसी में पूरे परिवार की गाड़ी ढड़कती थी। नाना-नानी का भरपूर लाड़-प्यार मिला इसलिए गरीबी का संत्रास वियोगी हरि को कभी आँसा नहीं। बड़े सौभाग्यशाली थे उनके नाना जी, उन्होंने झाँसी जाकर झाँसी की रानी के पराक्रमपूर्ण करतबों को अपनी आँखों देखा था।

वियोगी जी की पितृ-भूमि यद्यपि ग्राम पुरमऊ थी किन्तु उनका जन्म, शिक्षा-दीक्षा सभी कुछ छतरपुर में ही हुआ। अक्षर-बोध नाना जी ने घर

पर कराया फिर मदरसा में नाम लिखा दिया। उन दिनों छतरपुर में हाई स्कूल था। हेड मास्टर रामसहाय मुंशी सोहनलाल थे। बड़ा दबदबा और अनुशासन था उनका। जिस कक्षा के पास से वे निकल जाते तो सन्नाटा छा जाता था। स्कूल समय में इतने गंभीर रहते कि कभी किसी ने मुस्कुराते तक नहीं देखा। हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार लाला भगवानदीन सेकिण्ड मास्टर थे। वियोगी जी ने अंग्रेजी की पहली पुस्तक लाला जी से ही पढ़ी। उनके काशी चले जाने पर उनके पट्ट शिष्य बाबू गोविन्ददास सेकिण्ड मास्टर हुए जो अच्छे कवि और लेखक थे। छतरपुर में एक संस्कृत पाठशाला भी थी जिसके प्रधानाध्यापक थे पं० अनंतराम तिवारी शास्त्री। वे संस्कृत के बड़े प्रकाण्ड पंडित और कर्मकाण्डी होने के साथ संस्कृत के अच्छे कवि और साहित्यानुरागी थे। शास्त्री जी के घर पर वियोगी जी ने उनसे संस्कृत पढ़ी। रघुवंश मेघदूत,—पंडितराज जगन्नाथ का भामिनी विलास और लघु कौमुदी का अध्ययन उन्होंने शास्त्री जी के मार्ग-दर्शन में किया। जब वे मिडिल में थे तब दरबार से एक रुपया मासिक वजीफा भी मिलने लगा था। पुस्तकों और अध्ययन के प्रति लगाव बचपन से ही था। पैसे के अभाव से स्वयं पुस्तकें नहीं खरीद पाते थे किन्तु लाला भगवानदीन द्वारा स्थापित पुस्तकालय सरस्वती-सदन में पहुँचकर वे अपना यह शौक पूरा कर लेते थे। वियोगी जी के कथनानुसार उन्हें विद्यार्थी जीवन से ही एक व्यर्थ का व्यसन लग गया था और वह व्यसन था कविता लिखने का। वे नित्य एक नयी रचना करते और अपने मित्र लाला चिन्ताहरण, छक्कीलाल जी और भवानीप्रसाद पटैरया जी को सुनाया करते जो मुक्तकण्ठ से उनकी प्रशंसा करते और इस प्रकार उत्साहित होकर वे लिखते रहे—सैंतीस वर्ष की आयु तक। फिर काव्य-रचना से उन्होंने मुक्ति ले ली।

सन् १९१५ में उन्होंने मैट्रिक पास किया। आगे पढ़ने का साधन छतरपुर में नहीं था इसलिए स्कूली शिक्षा को यहीं विराम दे दिया। जब वे मैट्रिक की परीक्षा दे रहे थे तभी उनके विवाह का प्रस्ताव आया। विवाह के लिए वे कतई तैयार नहीं थे। घर-परिवार वालों ने, स्वजन-परिजनों ने बड़ा दबाव-प्रभाव डाला पर वियोगी जी अपने निश्चय से टस-से-मस नहीं हुए। समर्थ रामदास के जीवन से प्रेरणा लेकर वे इस निश्चय पर डट गये और डटे रहे। अन्ततः उनके अटल व्रत पर घर वालो को झुकना पड़ा। उनकी इस त्याग-वृत्ति के कारण वे प्रसिद्धि भाजन बन गये सामान्य से कुछ असामान्य

हो गये। कुछ ज्ञान-वैराग्य की ओर झुकाव हुआ। ऐसा साहित्य हाथ आते ही उसे पढ़ जाते। तत्कालीन छतरपुर नरेश महाराज श्री विश्वनाथ सिंह के चचेरे भाई ठाकुर जुझार सिंह जी से वियोगी जी की घनिष्ठ मित्रता थी। उनके निजी पुस्तकालय से स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ का सारा साहित्य लेकर पढ़ डाला। ठाकुर साहब के साथ सन् १६१६ में चित्रकूट, प्रयाग, काशी, गया, जगन्नाथपुरी की यात्रा कर डाली। इसी समय कुछ ऐसा संयोग हुआ कि महाराज विश्वनाथ सिंह जी की धर्मपत्नी महारानी कमल कुमारी देवी के स्नेह-भाजन वह बन गये। महारानी कमल कुमारी बड़ी धर्मनिष्ठ और साध्वी प्रकृति की थीं। वर्षों से अन्नाहार त्याग किये थीं केवल फलाहार पर चलती थीं। वियोगी जी उनके प्रति अटूट श्रद्धा रखते थे और उन्हें अपनी धर्म-माता ही मानते थे। उनके साथ भी लम्बी-लम्बी तीर्थ-यात्राओं के सुअवसर उन्हें मिले। चित्रकूट, वृन्दावन, हरिद्वार में तो अनेक बार उनके सत्संग में रहे। मिथिला में एक मास रहे। चित्रकूट से नासिक, एलौरा, घृष्णेश्वर, किष्किन्धा, पंढरपुर, कन्याकुमारी, रामेश्वरम्, मदुरई, तंजावर, श्रीरंगम्, तोताद्रि, उडुपी में मध्वाचार्य-मठ। दक्षिण भारत के विशाल, भव्य और शिल्प-वैभव से भरपूर मन्दिरों, तीर्थ-स्थलों और प्रकृति की मनोरम सुषमा का दर्शन-लाभ लेकर अंततः नाथद्वारा मन्दिर दर्शन से तीर्थ-यात्रा को विश्राम दिया। वियोगी जी ने यह यात्रा सन् १६२० में की। इसके पूर्व सन् १६१८ में उनके नाना का स्वर्गवास हो गया था। उस समय भी दक्षिण भारत की यात्रा में उन्हें भाषा के कारण कोई कठिनाई नहीं आयी। उन्होंने स्वयं ऐसा अनुभव व्यक्त किया है।

हिन्दी के ख्यातिप्राप्त विद्वान् पं० शुकदेव बिहारी मिश्र रियासत के दीवान थे। उन्होंने वियोगी जी की साहित्यिक मनोभूमि और काव्य-सर्जना विषयक चर्चाएँ सुन रखी थीं। एक दिन अपने बँगले पर वियोगी जी को बुलाया और अपने ग्रंथ मिश्र-बंधु विनोद का सम्पादन करने में सहयोग करने का प्रस्ताव किया। बारह रुपये मासिक पारिश्रमिक पर मात्र दो-तीन माह का काम था। वियोगी जी ने इस कारण विनम्रतापूर्वक असहमति प्रकट कर दी। हिन्दी-जगत् के एक और प्रतिष्ठित साहित्यकार बाबू गुलाबराय महाराजा साहब के प्राइवेट सेक्रेट्री थे। साहित्यानुरागी होने के कारण गुलाबराय जी और वियोगी जी में परस्पर मैत्री हो गयी। गुलाबराय जी के माध्यम से ही आरा के श्री देवेन्द्र कुमार जैन के साथ वियोगी जी का

परिचय हुआ, जिन्होंने उनकी 'प्रेम-पथिक' नामक रचना प्रकाशित की। साथ ही, श्रद्धेय पुरुषोत्तमदास टण्डन से उन्होंने वियोगी जी का परिचय कराया। टण्डन जी ने 'सूरसागर' का सम्पादन-कार्य तीस रुपये मासिक वेतन पर करने के लिए उन्हें हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से बुलाया। गुरुतर कार्य था किन्तु वियोगी जी ने बड़े अध्यवसाय और निष्ठा से उस कार्य का सम्पादन किया जिससे वे टण्डन जी के स्नेह और कृपा-भाजन बन गये। प्रयाग में त्रिवेणी तट पर सं० १६७८ में छब्बीस वर्ष की आयु में हरिप्रसाद द्विवेदी वियोगी हरि हो गये। तब से इसी नाम से जाने जाते रहे।

वियोगी जी को प्रयाग में हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने और टण्डन जी के आकर्षण ने बाँध लिया। संपादन-कार्य के साथ-साथ वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अंग हिन्दी-विद्यापीठ में अध्यापन का भी कार्य करने लगे। दोनों कामों का ५०/– रु० मासिक वेतन उन्हें मिलता था, जो उन जैसे अपरिग्रही व्यक्ति के लिए काफी था। कुछ समय पश्चात् तो उन्हें यह सनक भी सूझी कि सम्मेलन की निःशुल्क सेवा की जाये। टण्डन जी तक बात गयी। उन्होंने डाँटा "पैसा नहीं लोगे तो क्या भूखों मरोगे ?' किन्तु वियोगी जी तो ठान बैठे थे। सम्मेलन से पैसा नहीं लिया, भले ही मित्रों से उधार लेते रहे और पुस्तक-लेखन से उधारी चुकाते रहे।

सूर-सागर का सम्पादन हो जाने के पश्चात् 'ब्रज माधुरी सार' नामक दूसरा काव्य-संग्रह हरि जी ने तैयार किया। छतरपुर में रहकर उन्होंने ब्रज साहित्य का अच्छा अनुशीलन कर लिया था। ब्रज माधुरी सार में उन्होंने कुछ ऐसे कवियों को स्थान दिया था जो उस समय तक प्रकाश में नहीं आये थे। उनमें उल्लेखनीय श्री हरिराम व्यास, गदाधर भट्ट और श्रीभट्ट हैं। हरिराम व्यास की समस्त वाणी का संग्रह उन्हें छतरपुर में उपलब्ध हो गया था जिसमें लगभग ८०० पद और १४५ साखियाँ थीं। उनका यह काव्य-संग्रह हिन्दी-जगत् में अभिनन्दनीय हुआ।

वियोगी हरि का कवि और काव्य कब-कैसे उभरा और क्यों ओझल हो गया, इस उदयास्त की रोचक कहानी है। नौ वर्ष की आयु से कविता करने का शौक उन्हें चढ़ा। सर्वप्रथम गणेश-वंदना की एक कुण्डली रची। पड़ोसी लाला चिन्ताहरण को चाव से सुनायी। उन्होंने प्रशंसा की, पीठ ठोकी। हरि जी का मन फूल गया, उत्साह बढ़ा। इस धुन को बलवती बनाने में एक संयोग और जुड़ गया। छतरपुर में एक बड़े लोकप्रिय सिद्ध कवि थे—गंगाधर

व्यास। लोक प्रसिद्धि में ईसुरी के बाद उन्हीं का नाम आता है। वे काव्य-मर्मज्ञ भी थे। लाला भगवानदीन उन्हीं के शिष्य थे। उन दिनों बुन्देलखण्ड क्षेत्र में लावनी और रेखता की बड़ी चलन थी। इनके दो अखाड़े थे—तुर्रा और कलगी। दोनों में प्रतिस्पर्द्धा चलती थी, खूब फड़बाजी होती थी। हरि जी उसमें रस लेते रहे और उसके प्रभाव से अछूते नहीं रह सके। मिडिल में पढ़ते समय तुकबंदियाँ करते चले गये। सवैये, दोहे धनुष-यज्ञ पर लिखे। वीर हरदौल पर नाटक, श्री कृष्ण के नख-शिख-शृंगार पर कुछ पद, राणा-प्रताप पर खड़ीबोली में खण्ड काव्य, उर्दू में कुछ शेर जो 'प्रेम गजरा' में संगृहीत किये। ये सारी रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। इन्हें वियोगी जी कविता के नाम पर बचपन का खिलवाड़ कहते थे। मैट्रिक कर लेने पर कविता के भूत ने उन पर अच्छी सवारी गाँठ ली थी। प्रायः नित्य कुछ-न-कुछ लिखते। बिना लिखे भोजन पचाना कठिन हो गया। शिखरिणी छंद में 'प्रेम-पथिक' नामक एक छोटा काव्य लिख डाला जो प्रकाशित भी हो गया। फिर 'प्रेमांजलि', 'प्रेम-परिचय' का प्रणयन किया। 'कवि कीर्तन', 'अनुराग-वाटिका', 'वीर-सतसई', 'मन्दिर-प्रवेश', 'शुकदेव' खड़ीबोली का खण्ड काव्य। खड़ीबोली में ही छोटी-छोटी रचनाएँ 'मीठी बात', 'एक ही बात', 'विश्व कीर्तन' और गुरु गौरव एवं वीर रस के स्फुट छंद उन्होंने लिखे। उनकी गणना अच्छे कवियों में होने लगी। 'वीर सतसई' पर उन्हें मंगलाप्रसाद पारितोषक भी प्राप्त हुआ। सम्मेलन के सभापति पं० पद्मसिंह शर्मा ने पुरस्कार प्रदान किया—बारह सौ रुपये, ताम्रपत्र और श्रीफल। विनम्रतापूर्वक और बड़े संकोच से पुरस्कार स्वीकार तो कर लिया किन्तु पूरी राशि सम्मेलन को ही अर्पित कर दी। इस धन-विराग के उदाहरण से उनकी ख्याति में चार-चांद लग गये। उनकी कुछ खड़ीबोली की रचनाएँ छोड़कर प्रायः सभी रचनाएँ ब्रजभाषा में हैं।

हरि जी को सन् १६३३ के पश्चात् कविता लिखने से अकस्मात् विराग हो गया। इतना कुछ लिख जाने पर भी वे स्वयं को कवि नहीं मान्य कर पाये। उन्हें समाधान ही नहीं होता था कि कुछ कविताएँ लिखने मात्र से कोई कवि हो जाता है। उनकी मान्यता के अनुसार कवि तो स्रष्टा होता है, प्रजापति होता है। उनका कहना था "मैं तो एक कुशल कुम्हार भी नहीं बन पाया। चौदह-पंद्रह वर्ष तक अटपटी आकृतियों के कुछ शाब्दिक घड़े ही मैंने कल्पना के टेढ़े-मेढ़े चाक पर उतारे थे। उन अनगढ़ घड़ों में कभी जीवन-रस न उड़ेल सका। सहज में रस पड़ भी जाता, तो इतने अधिक छिद्र थे

कि एक बूँद भी न ठहर पाती।' कविता को जब मन से उतार दिया तब उनकी कविता का मूल्यांकन हुआ। कवि-सम्मेलनों के निमन्त्रण, पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांकों के लिए रचनाएँ भेजने हेतु पत्रों का तांता-सा लग गया। पर हरि जी ने चुप्पी साध ली। एक दिन हरिजन-निवास में गांधी जी के सामने भी उन्होंने कविता से अपने सम्बन्ध-विच्छेद की चर्चा चला दी। गांधी जी ने परामर्श दिया कि यदि कविता से तुम्हारा यह विराग सहज और अन्तर्प्रेरणा से जागा है तब तो ठीक है अन्यथा अंहकार से जन्मा विराग बार-बार चोट करेगा। इसे कोई त्याग मत मान बैठना। फरवरी सन् १६३५ में खण्डवा में पं० माखनलाल चतुर्वेदी ने हरि जी के स्वागत-सम्मान में एक कवि-गोष्ठी अपने निवास पर रखी। उनके मित्रों ने और चतुर्वेदी जी (दादा जी) ने स्वयं सुन्दर-सुन्दर रचनाएँ सुनायीं। उन्होंने हरि जी से भी कुछ सुनाने का अनुरोध किया। हरि जी ने कविता से सम्बन्ध-विच्छेद की बात वहां भी दुहरा दी। उनको हरि जी के 'छाया-कवि' की अकाल मृत्यु पर दुःख हुआ और यहाँ तक हुआ कि इस गोष्ठी में दादा जी ने इस घटना पर अपने शोकोद्‌गार भी प्रकट किये।

यह रही वियोगी जी की काव्य-यात्रा की कथा। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उन्होंने साहित्य से संन्यास ले लिया। लिखना तो जारी रहा। फिर वे गद्य की ओर मुड़े। निबन्ध लिखे। उसमें भी कविता की छाया उतर आयी। समीक्षकों ने उन्हें गद्य-काव्य की संज्ञा दी और ऐसे निबन्धों का एक संग्रह 'तरंगिणी' नाम से प्रकाशित हुआ। दूसरा संग्रह 'साहित्य-विहार' आया। फिर पन्द्रह वर्ष की अवधि में चार गद्य-काव्य—'अन्तर्नाद' 'भावना', 'प्रार्थना', और 'ठंडे छींटे' की रचना और प्रकाशन हुआ। इसी अवधि में लगभग इसी अंलकारी और काव्य शैली में दो पुस्तकें 'पगली' और 'विश्व-धर्म' भी लिख डालीं। छोटी-बड़ी सब अस्सी पुस्तकें उन्होंने लिखीं। पुस्तक-लेखन अपनी जीविका का साधन बनाया किन्तु कुछ उपार्जित नहीं कर पाये।

छतरपुर, पन्ना और सामान्यतः बुन्देलखण्ड के प्रति उसके मन में सदा आकर्षण बना रहा। यहाँ वन-श्री, छोटी-छोटी हरी-भरी पहाड़ियाँ, केन-बेतवा, उर्मिल, धसान की निर्मल-फेनिल नदियाँ, उनके अंचल में पले प्राकृतिक-दृश्य, झरनें, प्रपात, कला केन्द्र खुजराहो, हीरों की धरती पन्ना, कोलाहल से दूर यह शांत-नीरव प्रदेश उन्हें भाता था। और इसलिए जब भी अवसर

पाते वे यहाँ अवश्य आते या आने की लालसा पाले रहते। सन् १९२५ में टण्डन जी पंजाब नेशनल बैंक के मैनेजर होकर लाहौर चले गये। पं० मदन मोहन मालवीय जी ने उन्हें ऐसा करने का निर्देश किया था क्योंकि देश-सेवा में जुटे रहने से उनके परिवार की हालत खस्ता हो गयी थी।

उधर टण्डन जी लाहौर गये और वियोगी जी पन्ना चले आये। पन्ना के तत्कालीन महाराजा यादवेन्द्र सिंह जी ने दो-तीन बार पत्र लिखकर उन्हें पन्ना आने का निमन्त्रण भी दे रखा था। प्रारम्भ में राज्य के अतिथि-निवास में फिर मोहन-निवास में उन्हें ठहराया गया। राज्य के अतिथि होने से बड़ा सम्मान और दबदबा रहा उनका। आठ-दस माह निठल्ले रहे फिर शिक्षा-विभाग में विशेष सहायक के पद पर उनकी नियुक्ति हो गयी। यहां भी उन्होंने अवैतनिक रूप में ही यह पद स्वीकार किया। हाई स्कूल छोड़कर रियासत के सभी स्कूल उनके अधीन थे। उन्होंने थोड़े ही समय में गाँव-गाँव का दौरा करके वहाँ शिक्षा के प्रति जागरूकता और विद्यालयों की संख्या बढ़ायी। हरिजन बालकों के लिए भी शिक्षा-व्यवस्था की। पन्ना नगर में अछूतों की सभा करके अछूत-पाठशाला खोली सन् १९३१ में। वह अपने मेहतर चपरासी से बिस्तर बिछवा लेते, उसके हाथ से पीने को पानी ले लेते। यह खबर राजा और राजा के कारिन्दों को मिली। उन्होंने अपनी आँखों यह सब देखा भी। महाराजा पन्ना और उनके भाई ने तो विरोध नहीं किया किन्तु वहां की रूढ़िवादी जनता को यह बेस्वाद लगा। प्रत्यक्ष तो कोई कुछ न कह सका किन्तु फुसफुसाहट चलने लगी। हरिजनों के प्रति यह औदार्य, यह समता-ममता, यह जागरण-बोध और वियोगी जी द्वारा परोक्ष रूप से चेतना की भूमि तैयार करने की इस प्रक्रिया से रियासत अपनी हित-रक्षा में संकट की आहट महसूसने लगी और इसलिए उसे वियोगी जी खटकने लगे। वियोगी जी को भी इस वातावरण में घुटन का अनुभव होने लगा और सन् १९३२ में उन्होंने पन्ना छोड़ दिया। पन्ना राजघराने से उनके आत्मीय सम्बन्ध हो गये थे। मोहन-निवास से पन्ना महाराजा यादवेन्द्र सिंह, उनके छोटे भाई नन्हें राजा, उनकी पत्नी सबने भीगी आँखों और भरे गले से वियोगी जी को विदा किया।

साढ़े छह वर्ष पश्चात् सन् १९३२ में सबसे पहले वे जबलपुर गये और दलित वर्ग के हित चिन्तक उस 'पतित-बंधु' पत्र का अध्याय समाप्त किया, जिसे वे पन्ना-आवास अवधि में जबलपुर से प्रकाशित करते थे। तदुपरान्त इलाहा-

बाद गये। गोंडा जेल में टण्डन जी से मिले। उन्होंने साहित्य-सेवा और हरिजन-सेवा करने का परामर्श दिया और गांधी जी का मार्गदर्शन लेने का निर्देश किया। गांधी जी से यरवड़ा जेल जाकर मिले और हरिजन-सेवा के प्रति उन्हें अपनी अभिरुचि से अवगत कराया। गांधी जी ने भी टण्डन जी द्वारा दिये गये परामर्श का समर्थन किया। कुछ ही दिनों पश्चात् श्री घनश्यामदास बिड़ला ने उन्हें हरिजन-सेवक संघ के कार्य के निमित्त दिल्ली बुला लिया और हिन्दी साप्ताहिक 'हरिजन-सेवक' के सम्पादन का कार्य उन्हें सौंप दिया। इस प्रकार उनके जीवन-प्रवाह ने इस कार्य के माध्यम से एक महत्त्वपूर्ण मोड़ लिया और हरिजन-सेवा के रूप में लोक-सेवा एवं समाज-सेवा के लिए स्वयं को समर्पित कर दिया।

उन दिनों 'हरिजन सेवक संघ' के अध्यक्ष श्री घनश्यामदास बिड़ला थे। संघ की ओर से अंग्रेजी पत्र 'हरिजन' तो पहले से ही प्रकाशित हो रहा था। वियोगी हरि के संघ में पहुँचने पर दो माह पश्चात् हिन्दी साप्ताहिक 'हरिजन-सेवक' का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया। वियोगी जी को १२०/- रु० मासिक वेतन दिया जाता था किन्तु वियोगी जी को उनकी प्रकृति के अनुसार यह राशि बोझिल लगने लगी और उन्होंने इसे कम करते-करते ६५/- रु० मासिक तक उतार लिया। उनके सहयोगियों और यहाँ तक कि बिड़ला जी ने उन्हें बहुत समझाया कि दिल्ली जैसे नगर में १५०/- रु० मासिक से कम में निर्वाह कर पाना कठिन है। किन्तु हरि जी ६५/-रु० मासिक में काम चलाते रहे। अपने ऊपर कम-से-कम व्यय करने का प्रथम तो उनका सहज स्वभाव था और फिर उन पर टण्डन जी, गांधी जी, ठक्कर बापा और विनोबा भावे के संयम-नियम एवं तपस्वी जीवन का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। संघ से १२० - रु० मासिक वेतन लेने के सन्दर्भ में उनके मन में जो उथल पुथल हुई वह 'मेरा जीवन-प्रवाह' में इस प्रकार व्यक्त की गयी है—"सोचने लगा, सार्वजनिक संस्था से इतना ज्यादा पैसा लेना उचित है क्या? जो सेवा-कार्य मुझे सौंपा गया है उसे अर्थोपार्जन का साधन बनाना उचित नहीं।

साढ़े आठ वर्ष तक 'हरिजन-सेवक' के सम्पादन का काम हरि जी ने किया। फिर पत्र का प्रकाशन दिल्ली से उठकर पूना, तत्पश्चात् अहमदाबाद चला गया और सम्पादन का दायित्व प्यारेलाल जी पर आ गया। अ० भा० हरिजन सेवक संघ के महामन्त्री अमृतलाल विट्ठलदास ठक्कर सन् १९३२ से

१९५१ के प्रारम्भ तक पूरे १८ वर्ष ठक्कर बापा के सान्निध्य में वियोगी जी रहे और उन्होंने अनुभव किया वे वनवासियों-गिरिजनों-हरिजनों के प्राण थे। यद्यपि वे कठोर अनुशासनवादी थे किन्तु गांधी जी की भाँति उनका हृदय दीन-दु:खियों और दलित वर्ग के प्रति परम करुणा और प्रेम से लबालब भरा था। ठक्कर बापा का सम्पूर्ण जीवन इन्हीं दीनों की सेवा में समर्पित था। वे सच्चे दीनबन्धु थे। वैसे तो गांधी जी का जीवन अस्पृश्यता निवारण और हरिजन सेवा का पर्याय बन गया था किन्तु हरिजन सेवक संघ को अखिल भारतीय संगठनात्मक स्वरूप देने में जो अथक श्रम ठक्कर बापा ने किया उसका कोई दूसरा उदाहरण नहीं है। ठक्कर बापा के साथ संघ की विविध प्रवृत्तियों में बिड़ला जी का पूरा सहयोग रहता था। वे संघ के जन्म-काल सन् १९३२ से सन् १९५९ तक उसके अध्यक्ष रहे। सन् १९५१ में ठक्कर बापा का देहान्त हो गया। उनके देहान्त के बाद से बिड़ला जी अध्यक्ष पद त्यागने की रट लगाये रहे और अन्ततः सन १९५९ में श्रीमती रामेश्वरी देवी नेहरू को अध्यक्ष पद देकर भारमुक्त हो गये। सन् १९६५ में अध्यक्ष के रूप में वियोगी हरि को चुना गया।

हरिजन सेवक संघ के अध्यक्ष पद से ११ मई, सन् १९७५ को वियोगी जी ने गम्भीर चिन्तन के पश्चात् त्याग-पत्र दे दिया। यह त्याग-पत्र की घटना भी उनकी वैचारिक मनोरचना की परिचायक है। बात यों है कि हरिजन सेवक संघ के भुवनेश्वर अधिवेशन में उनसे पूछा गया कि जय-प्रकाश नारायण जी द्वारा चलाये जा रहे समग्र क्रान्ति के आन्दोलन में हरिजन सेवक संघ के कार्यकर्त्ताओं को भाग लेना या सहयोग करना क्या उचित है? उन्होंने जे० पी० के आन्दोलन में भाग लेने से अस्पृश्यता निवारण के विचार या कार्य में कोई बाधा न मानकर उसमें सहयोग करने को उचित ठहराया। उनका यह मन्तव्य समाचार-पत्रों में भी प्रकाशित हुआ। इससे संघ के अन्य सहयोगी आशंकित होकर डर गये कि अध्यक्ष के ऐसे निर्णय से तो संघ को मिलने वाला शासकीय अनुदान भी बन्द हो सकता है। वियोगी जी को अपने सहयोगियों की इस भीरु मानसिकता से पीड़ा हुई और वे सोचने लगे कि अनुदानों का मोह तो हमें कभी भी कर्त्तव्य-च्युत कर सकता है, क्या इस प्रकार हम गांधी जी की आत्मा को शान्ति पहुँचा सकेंगे? और उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। वे तन्त्र-मुक्त तो अवश्य हो गये किन्तु अस्पृश्यता-निवारण के सिद्धान्त और विचार से उनका जीवन-भर अटूट सम्बन्ध बना रहा। वे यद्यपि संघ के प्रारम्भ-काल (सन् १९३२) से ही जुड़े हुए थे किन्तु

इसके पूर्व से ही उनमें अस्पृश्यता-निवारण की धुन जमी हुई थी। उनका कहना था कि सच्चा वैष्णव तो समदर्शी होता है, वह ऊँच-नीच भाव से बहुत दूर है। जो इस आत्म-शुद्धि की प्रवृत्ति से परहेज करता हो उसे उन्होंने कभी भागवत या वैष्णव नहीं माना। उनकी दृष्टि में अस्पृश्यता-निवारण न तो सामाजिक कार्य है और न ही राजनैतिक बल्कि हिन्दू-धर्म पर अस्पृश्यता का लगा हुआ महाकलंक और महापाप को धोने का यह एक पुण्य कार्य है।

यद्यपि हरिजन सेवक संघ-कार्य में प्रवृत्त हो जाने पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन से उनका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं रह गया था किन्तु निरन्तर राष्ट्रभाषा-प्रसार और हिन्दी-साहित्य के प्रति उनकी सेवाओं को ध्यान में रखकर सन् १९४६ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के करांची-अधिवेशन का सभापति उन्हें बनाया गया। इसी प्रकार सं० २०३४ से सं० २०३९ तक के लिए हैदराबाद अधिवेशन में उन्हें फिर से सभापति बनाया गया। साहित्य, साहित्य-समारोह और साहित्यकारों से उनके सतत आत्मीय सम्बन्ध प्रत्यक्ष या परोक्ष-रूप से बने रहे। सं० २००७ में आधुनिक हिन्दी के जनक भारतेन्दु जन्मशती-महोत्सव में फिर सं० २०२३ में ब्रज-वाणी के रस-सिद्ध कवि जगन्नाथदास "रत्नाकर" जन्मशती के अवसर पर और तीसरी बार काशी नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापक बाबू श्यामसुन्दरदास की जन्मशती के अवसर सन् १९७४ में उन्हें मुख्य अतिथि के रूप में आमन्त्रित किया गया।

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने उन्हें सन् १९६७ में सरस्वती पूजन-महोत्सव में उद्घाटनकर्त्ता के रूप में कनखल (हरिद्वार) आमन्त्रित किया। बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद् ने १९८१ में उन्हें पटना निमन्त्रित किया। आन्ध्र-भागवतकार भक्त पोतन्ना पंचशती महोत्सव में उन्हें वारंगल में निमन्त्रित किया गया। अपने समकालीन प्रायः सभी मूर्द्धन्य कवियों, लेखकों, साहित्यकारों से उनका किसी-न-किसी रूप में निकट सम्बन्ध रहा, जिनमें उल्लेखनीय हैं श्रीधर पाठक, पद्मसिंह शर्मा, बाबू श्यामसुन्दरदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, रत्नाकर, हरिऔध, प्रसाद निराला, पंत, महादेवी वर्मा मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर, डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी, डॉ० हजारी-प्रसाद द्विवेदी, किशोरीदास बाजपेयी, वासुदेवशरण अग्रवाल, लाला भगवानदीन, डॉ० गुलाबराय आदि।

वियोगी जी ब्रज-साहित्य के और विशेषतः संत-साहित्य के सुधी अध्येता होने के साथ उसमें गहरे उतर कर डुबकियाँ लगाने वाले रसज्ञ विद्वान् थे। संत कबीर, दादू, जायसी, रैदास, महात्मा तुलसी, मीरां, सूर, अष्टछाप के अन्य कवियों में ही वे अधिक रमे।

वियोगी जी राजनीति से दूर रहे परन्तु राष्ट्र-भक्ति से सदा भरपूर। राष्ट्रीय-चेतना और देश-भक्ति से प्रेरित आन्दोलनों की लहर से प्रायः सभी देशी रियासतें लगभग अछूती थीं। छतरपुर और पन्ना रियासतें भी इस परिप्रेक्ष्य में चरणपादुका जैसी कुछ घटनाओं को छोड़कर कोई अपवाद नहीं थीं। अंग्रेजी-राज के प्रति पूरी वफादारी ये रियासतें निभाती थीं। क्रांतिकारियों का नाम लेना, तिलक, गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस आदि देश के नेताओं की जय बोलना, तिरंगा झण्डा लगाना, वन्देमातरम् बोलना अपराध माना जाता था। कुँवर कन्हैया जू द्वारा लिखित छत्रसाल की जीवनी 'बुन्देलखण्ड केसरी' नामक पुस्तक के कारण उन्हें मुकदमा चलाये बिना जेल भेज दिया गया था। फिर भी वियोगी जी उस समय भी खादी धारण करते थे, अस्पृश्यता-निवारण जैसी समाज-सुधार की दिशा उन्होंने ले ली थी तथा उनके समस्त कार्य-कलापों के नेपथ्य में राष्ट्रीय चेतना के ही स्वर ध्वनित होते थे। जब वे एकाग्र मन से हरिजन सेवक संघ के काम में लग गये तो लगभग एक दशक पश्चात् गांधी जी द्वारा अंग्रेज-शासन के विरुद्ध सन् १९४२ का ऐतिहासिक 'भारत छोड़ो' आन्दोलन चलाया गया था। उसमें कूदने की हिलोर वियोगी जी के मन में आयी भी किन्तु एक तो हरिजन सेवक संघ के प्रति उनका पूर्ण समर्पण और नैष्ठिक मानसिकता ने और दूसरे ठक्कर बापा ने उन्हें ऐसा करने की अनुमति नहीं दी। उनके जीवन का अधिकांश क्रियाशील भाग 'साहित्य-सम्मेलन' एवं 'हरिजन सेवक संघ' में ही व्यतीत हुआ और वे राजनीति में जाने से बच गये अन्यथा उनके जीवन के रचनात्मक पक्ष का पटाक्षेप हो जाता।

यद्यपि वियोगी जी प्रत्यक्ष राजनीति से विलग थे किन्तु देश को प्रभावित करने वाली राजनैतिक घटनाओं का उनके मानस पर जो परिणाम होता था वह उनकी आत्म-कथा 'मेरा जीवन प्रवाह' में ही यत्र-तत्र व्यञ्जित होता है। १५ अगस्त, १९४७ को देश के स्वाधीन होने पर उन्होंने इस पुस्तक में जो लिखा है वह इस प्रकार है—,स्वर्ण-रथ के उतरने के पहिले ही हमारी हरी-भरी स्वर्ण-भूमि पर रक्त वर्षा शुरू हो गयी थी। असंतुष्ट मुस्लिम लीग

को बहुत मनाया पर वह न मानी। देश का अंग भंग करने पर तुल गयी। कांग्रेस जितनी ही झुकी वह उतनी ही अकड़ती गयी। लीग के बेहद घृणा-प्रचार से देश के कई भागों में नृशंस हत्या काण्ड हुए। गांधी जी की छाती इन घृणित घटनाओं को सुन-सुनकर धायँ-धायँ जल उठी।············देश को खण्डित कर दिया गया। गांधी जी को भी जहर का घूंट पीकर इस घातक योजना का समर्थन करना पड़ा। बेचारे एक टण्डन जी ने ही विरोध की आवाज उठायी पर वह सुनी-अनसुनी कर दी गयी। ऊपर से देखने में नहीं आये पर अन्दर-अन्दर गांधी जी के कलेजे के टुकड़े-टुकड़े हो गये। देश का अंगच्छेद हो जाने पर भी शान्ति न हुई। आग और भी भड़क उठी। जिस दिन भारत खण्डित हुआ उसी दिन युग-युग के लिए अशांति के विष-बीज बो दिये गये।''

इसी प्रकार देश के नेताओं के हाथ में सत्ता-सूत्र आने पर उनकी मनोवृत्ति और उनके शासन के लक्षण देखकर वियोगी जी के मन पर जो प्रतिक्रिया हुई उसे उन्होंने 'मेरा जीवन-प्रवाह' में इस प्रकार व्यक्त किया है—'प्रश्न है कि क्या गांधी जी के अनुयायी और उनके उपासक उनकी अपनी कल्पना का 'राम-राज्य' भी स्थापित कर सकेंगे? वह राज्य जिसमें प्रेम ही राजा हो, प्रेम ही प्रजा, जहाँ कर्तव्य के आगे अधिकार को आदर न दिया जाये, जहाँ धर्म के दण्ड को राज के दण्ड से ऊँचा स्थान दिया जाय।········बापू की आत्मा को तभी संतोष होगा जब ऊँचे स्वर से उनका जय-जयकार करने वाले हम सब अपनी ही विवेक-बुद्धि से सत्य को पहिचानेंगे, प्रेम को हृदय में स्थान देंगे, अन्धानुकरण न कर उनके सुझाये मार्ग पर सचाई से चलने का नम्रतापूर्वक प्रयत्न करेंगे।' तटस्थ भाव से देखने पर शासन की गति-विधियों ने जो छाप उनके मन पर छोड़ी वह उन्होंने इस प्रकार व्यक्त की—'दूर तट पर खड़े-खड़े मैं देखता रहा कि राज-व्यवस्था ठीक-ठीक आखिर क्यों नहीं जम रही। चोर बाजार और भी गरम हो गया। घूसखोरी भी कितनी बढ़ गयी? अनुभवशून्य अधिकारी आ-आकर कुर्सियों पर बैठ गये। पदों की थाली पर लोलुप जनसेवक अकाल-पीड़ितों की तरह टूट पड़े। तन्त्र की गति मंद पड़ने लगी। साधारण जनता तक स्वराज्य का प्रकाश नहीं पहुँचा।············हाँ, अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान बढ़ा, बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनीं पर इस सबसे उसे क्या लेना-देना।·········अखबारों में कितनी ही भड़कीली योजनाएँ प्रकाशित हुई पर अमल उन पर बहुत कम हुआ या हुआ ही नहीं।············ध्यान अधिकतर अन्तर्राष्ट्रीय और एशिया के नेतृत्व पर रहा।

हर बात में कभी तो सोवियत रूस का और कभी अमेरिका का मुँह ताका गया, अपनी हीनभावना को प्रत्यक्ष कर दिया गया। बहुसंख्यकों को व्यर्थ चिढ़ाया गया। अतिन्याय के फेर में पड़कर कभी-कभी सामान्य न्याय की उपेक्षा की गयी। स्वस्थ और मौके की आलोचना भी सरकार को अच्छी नहीं लगी। बहुतों ने लोभ से और कुछेक ने भय से अपना सच्चा मत प्रकट नहीं किया। कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को यों ही टाल दिया गया जैसे हिन्दी को राष्ट्र-भाषा और देवनागरी को राज लिपि मान लेने में प्रायः हिचकिचाहट दिखाई गयी। शुद्ध वैज्ञानिक तथा राष्ट्रीय प्रश्न को दबी जबान से साम्प्रदायिक कहा गया। सांस्कृतिक प्रश्न वैज्ञानिकों पर न छोड़ कर राजनेताओं पर छोड़ दिये गये। किसी भी शासन-तंत्र के हित में खास कर उसके आरंभ काल में ये लक्षण अशुभ हैं।'' जन-सामान्य को भी उन्होंने कम दोषी न पाकर लिखा है—

''फिर प्रजा ने भी बुरी उतावली और अविवेक से काम लिया। उसने साल-छह महीने के अन्दर ही सब-कुछ कर लेना चाहा। लोग अपने पैरों पर खड़े नहीं हुए। पंगु बनकर सरकारी बैसाखियों पर सारा भार रखकर चलने की चेष्टा की। चोरबाजारी और घूसखोरी जो इतनी अधिक बढ़ी और फैली इसमें प्रजा भी दोषी रही, और सरकार से भी कहीं अधिक।' वियोगी जी का साहित्यिक अवदान प्रचुर है। पन्ना के आवासकाल में उन्होंने 'वीर सतसई', 'भावना', 'प्रेम योग', 'पगली', 'विश्व-धर्म', 'अनुराग-वाटिका', इसके पूर्व छतरपुर में 'प्रेम गजरा', 'प्रेम-पुरी', 'प्रेम-पथिक', 'प्रेम-मन्दिर', 'प्रेमांजलि', 'प्रेम-परिग्रह', काव्य-रचनाएँ की। फिर प्रयाग में 'कवि-कीर्तन' लिखा, 'प्रवद्ध-यामुन' नाटक लिखा। प्रयाग में ही 'संक्षिप्त सूर-सागर' और 'ब्रज माधुरी सार' जैसे ग्रंथों का सम्पादन किया। गद्य-काव्य में 'तरंगिणी' 'अन्तर्नाद', भावना', 'प्रार्थना', 'ठण्डे-छीटे', निवन्ध-संग्रह में 'साहित्य-बिहार' आदि उल्लेखनीय हैं। विनय-पत्रिका पर टीका भी प्रसिद्ध है।

वियोगी जी की प्रकृति आत्म-ज्ञापन की नहीं वल्कि आत्म-गोपन की थी। वे यश एवं कीर्ति से कोसों दूर रहना चाहते थे। नवम्बर सन् १९६६ में उनके कुछ आत्मीयों ने उन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने की योजना बनायी पर उन्होंने विनम्रतापूर्वक उस सम्मान को स्वीकारने से साफ इन्कार कर दिया। दूसरी बार पुनः हरिजन सेवक संघ ने भी उन पर अभिनन्दन ग्रन्थ-प्रकाशन का विचार किया किन्तु इस बार भी वे सहमत नहीं हुए। छतरपुर

के साहित्यकारों ने भी ऐसी ही योजना कुछ वर्ष पूर्व बनायी थी किन्तु वह सफल नहीं हो पायी। बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी छतरपुर इस संदर्भ में सौभाग्यशाली है कि वह वियोगी जी को वर्ष १९८७ में सम्मानित करके गौरव अर्जित करने का स्वर्ण-योग पा सकी।

श्री वियोगी हरि के समग्र जीवन पर विहंगम-दृष्टिक्षेप करने पर हम उनकी जीवन-यात्रा वित्त और यश-निरपेक्ष हिन्दी-भाषा एवं साहित्य उपासक की अकलुष यात्रा, सम्पूर्ण-समर्पण-भाव तथा मानवीय संवेदनशील मन से उत्पीड़ित, उपेक्षित, तिरस्कृत-दलित वर्ग की सेवा में सतत् निरत पावन गंगा की भाँति निस्पृह यात्रा, समाज में अस्पृश्यता-निवारण जैसे कलंक को धोने के लिए 'हरिजन सेवक-संघ' के माध्यम से एक तपोनिष्ठ साधक की यात्रा सारे जीवन ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को चरितार्थ करने की सार्थक यात्रा के रूप में देखते हैं। ऐसे ऋषि तुल्य मनीषी जीवन को जितनी श्रद्धा और सम्मान अर्पित किया जाय वह उस जीवन के परिमाप में छोटा ही पड़ेगा।

—अधिवक्ता, छतरपुर

वियोगी हरि : व्यक्तित्व और कृतित्व

—डॉ० राधा वल्लभ शर्मा

⊙

वियोगी हरि उन विरले रचनाकारों में से हैं जिन्होंने एक लम्बी अवधि तक हिन्दी साहित्य की सेवा की है। उन्होंने द्विवेदी-युग में साहित्य सृजन प्रारंभ किया था और मृत्युपर्यन्त वे सृजन में संलग्न रहे। उनका व्यक्तित्व इतना महान् और कृतित्व इतना व्यापक है कि उसे एक निबंध की परिधि में बाँध पाना असंभव नहीं पर कठिन अवश्य है। उन्होंने लगभग १५० ग्रंथों की रचना की है। उनका व्यक्तित्व गांधीवाद से प्रभावित है और हरिजन सेवा में तो उन्होंने अपना सारा जीवन ही लगा दिया। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही प्रेरक है।

जन्म, प्रारंभिक जीवन और शिक्षा :

वियोगी हरि का जन्म बुन्देलखण्ड अंचल के एक छोटे-से नगर छतरपुर में संवत् १९५२ को रामनवमी के दिन एक साधारण कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ। पिता का निधन बचपन में ही हो गया था। हरि जी का लालन-पालन उनकी माँ श्रीमती तुलसी बाई ने किया। प्रारंभिक जीवन नाना पंडित अच्छेलाल तिवारी के संरक्षण में बीता। बचपन का नाम था हरि प्रसाद किन्तु सन् १९२० में उन्होंने स्वतः 'वियोगी हरि' नाम धारण कर लिया।

हरि जी की प्रारंभिक शिक्षा पंडित परमानन्द पाण्डेय की चटसाल में हुई। उसके बाद तीसरे दर्जे से दसवें दर्जे तक महाराजा हाई स्कूल में अध्ययन किया। उन दिनों हेडमास्टर मुंशी सोहनलाल थे। हरि जी के अध्यापकों में लाला भगवानदीन जैसे विद्वान् थे और संस्कृत के शिक्षक थे पंडित अनंतराम शास्त्री जिनकी चर्चा हरि जी ने अपने ग्रंथ 'मेरा जीवन प्रवाह' में आदर-पूर्वक की है।

बचपन में हरि जी को अपनी जन्मभूमि से बड़ा लगाव रहा किन्तु यहाँ की गरीबी और देशी रजवाड़ों के शोषण से मन दुःखी रहने लगा और वे बाहर जाने के लिए छटपटाने लगे। संयोग से छतरपुर नरेश विश्वनाथ सिंह

की पत्नी महारानी कमल कुमारी 'युगल प्रिया' का उन्हें भरपूर स्नेह मिला जिसके साथ हरि जी ने अनेक तीर्थों की यात्राएँ कीं।

सन् १९२० के आसपास वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से जुड़े जहाँ लगभग सात वर्ष तक रहे। इस अवधि में उनका देश के अनेक प्रख्यात साहित्यकारों, देशभक्तों और समाजसेवकों से परिचय हुआ। यहीं रहकर 'वीर सतसई' की रचना प्रारंभ की। इसके उपरान्त लगभग छह वर्ष तक वे पन्ना में रहे। किन्तु वहाँ भी मन नहीं रमा। सन् १९३२-३३ के आसपास वे 'हरिजन सेवक' नामक साप्ताहिक पत्र के सम्पादक बने और तब से दिल्ली उनका स्थायी निवास बन गया। सन् १९७५ तक वे हरिजन सेवक संघ से जुड़े रहे और उन्होंने अनेक प्रदेशों की यात्राएँ कीं। पूज्य बापू और दीनबन्धु ठक्कर बापा का हरि जी को पर्याप्त स्नेह और मार्गदर्शन मिला परिणामतः हरिजन-सेवा उनके जीवन का मुख्य क्षेत्र बन गया।

साहित्य-सेवा :

हरि जी ने एक लम्बी अवधि तक साहित्य की सेवा की है और लगभग डेढ़ सौ पुस्तकों की रचना की है। हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं के संवर्द्धन में हरि जी का पर्याप्त योगदान है। काव्य, नाटक, गद्यकाव्य, कहानी, आत्मकथा, संस्मरण, निबंध, टीकाएँ, संकलन और संपादन तथा विचार प्रचारार्थ सामग्री—सभी विधाओं में उनका कृतित्व बिखरा हुआ है।

उनकी बहुआयामी साहित्य-साधना का प्रथम पुष्प 'प्रेमपथिक' नामक काव्य ग्रंथ है जिसका प्रकाशन सं० १९७० के लगभग हुआ। तब से लेकर मृत्युपर्यन्त (९ मई, १९८८) वे कुछ-न-कुछ साहित्य-जगत् को देते रहे हैं। उनकी प्रमुख रचनाओं की वर्गीकृत सूची निम्न प्रकार है—

काव्य : प्रेमपथिक, प्रेमशतक, एक ही बात मीठी बातें और अपनी बातें, गुरु पुष्पांजलि, शुकदेव (दृश्य काव्य), कवि कीर्तन, अनुराग वाटिका, मंदिर प्रवेश, वीर सतसई, गुरु गौरव, चेतावनी और प्रभात फेरी के गीत।

नाटक : छद्मयोगिनी नाटिका, प्रबुद्ध यामुन या यामुनाचार्य चरित और बाबा विश्वनाथ डोम बस्ती में।

गद्यकाव्य : तरंगिणी, अंतर्नाद, भावना, ठंडे छींटे, प्रार्थना, पगली, श्रद्धाकण इत्यादि।

कहानी, आत्मकथा और संस्मरण ग्रंथ : ना घर मेरा (कहानी), मेरा जीवन प्रवाह (आत्मकथा), ठक्कर बापा, दीनबंधु ठक्कर बापा (आत्म-कथा), क्या कभी भूल सकता हूँ और २२ साहित्य महारथियों के संस्मरण ।

निबन्ध : साहित्य विहार, प्रेमयोग, यों भी तो देखिए, गांधी देख रहा है, तटस्थ कौन, उद्यान इत्यादि ।

टीका ग्रन्थ : शिवा बावनी, सूर सूक्ति सुधा, विनयपत्रिका, बिहारी संग्रह, गोस्वामी तुलसीदास के सुबोध दोहे, कबीर की साखियाँ, संतवाणी, जपुजी और शेख फरीद ।

संकलन एवं सम्पादन : संक्षिप्त सूरसागर, ब्रजमाधुरी सार, सन्त-सुधा सार, दादू दयाल, बुद्धवाणी, सूर सूक्ति सुधा, वीर विरुदावली, छत्रसाल ग्रंथावली, मीराबाई, सदजोबाई और दयाबाई, हिन्दी पद्य रत्नावली, हिन्दी गद्य रत्नावली, साखी सतसई, वृत्तचंद्रिका, जायसी की सूक्तियाँ आदि ।

विविध : इनके अतिरिक्त अस्पृश्यता निवारण तथा हरिजन कार्य से संबंधित अनेक पुस्तकें तथा प्रचार पैम्पलेट भी उन्होंने लिखे हैं । भारतीय संस्कृति पर विशाल ग्रंथ हमारी-परंपरा का उन्होंने सम्पादन किया है ।

संपादन : सम्मेलन-पत्रिका, पतित बन्धु, हरिजन सेवक, हरिजन सेवा तथा ब्रजभारती आदि पत्रिकाओं का संपादन भी किया है । उनकी अंतिम प्रकाशित रचना है—'समता के पथ पर, जिसका प्रकाशन प्रभात प्रकाशन दिल्ली से उनकी मृत्यु के कुछ समय पूर्व हुआ ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, राष्ट्र-भाषा परिषद विहार के सभापति के रूप में उनके भाषण भी बहुचर्चित रहे । अनेक संस्थाओं ने हरि जी को सम्मानित भी किया है ।

वियोगी हरि के बारे में पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने ठीक ही लिखा है कि "वियोगी हरि साहित्यिक तपस्वी हैं, जो साहित्य निर्माण के रास्ते से दूसरे रास्ते पर उतर गये हैं ।" और यह दूसरा रास्ता है समाज-सेवा का । उनके व्यक्तित्व में समाज-सेवा की गंगा, साहित्य-साधना की यमुना चिन्तन की सरस्वती का अद्‌भुत संगम हुआ है ।

व्योहार राजेन्द्र सिंह : एक छायादार दरख्त

—डॉ० कृष्णकुमार हूंका

⊙

इसे विडम्बना ही कहा जायगा कि भारतीय जन-मानस अपने चतुर्दिक् व्यक्तित्वों का मूल्यांकन समय रहते नहीं करता कदाचित् इसी कारण पाश्चात्य कटु आलोचक इस देश को 'मूर्ति-पूजन का देश' भी कहते हैं । इतिहास साक्षी है कि इस देश की महान् कृतियों एवं कृतिकारों से हम शताब्दियों बाद परि-चित हुए । इसे सुखद संयोग ही कहा जायेगा कि जबलपुर का गांधी व्यौहार राजेन्द्र सिंह की सुकीर्ति-पताका न केवल इस संस्कारधानी वरन् प्रदेश-देश में फैली । वे बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न थे । स्वतंत्रता संग्राम से लेकर उन्होंने विविध विषयों का साहित्य सृजन, श्रेष्ठ अनुवादक, सहकारिता, सर्वोदय आन्दोलन, हरिजन सेवा दल के सेवाव्रती सेवक, हिन्दी-प्रचार सेवा आदि ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ उनका अप्रतिम योगदान रहा है । व्यौहार जी के व्यक्तित्व की विशिष्टता यह थी कि वे लोकोपयोगी-ध्येयों में सदा रुचि रखते थे ।

आपके पूर्वज मराठों और गौड़ राजाओं के समय उच्च पदों पर रह चुके थे फलतः 'व्यौहार' शब्द उस पद का ही सूचक है जो कालान्तर में अंग्रेज सरकार द्वारा भी स्वीकृत हो चुका था । वैसे आप जाति से कायस्थ थे । आपके पिता स्व० व्यौहार रघुवीर सिंह शहर के कुछ रईसों में से एक गण-मान्य थे । ऐसे भौतिक सुविधाओं से सम्पन्न परिवार में व्यौहार राजेन्द्र सिंह का जन्म संवत् १९५७ में भाद्रपद शुक्ल की १२वीं को जबलपुर में हुआ था । प्रारम्भ से ही आपकी रुचि विद्या-अध्ययन की तरफ रही । आपने कुछ काल शांति निकेतन में भी रहकर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के सान्निध्य में ज्ञानार्जन किया । वहीं बँगला भाषा सीखी व उसके साहित्य से परिचित हुए । सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में कारावास के समय आपने आचार्य विनोबा भावे एवं काका कालेलकर के संपर्क से मराठी एवं गुजराती भाषाएँ सीखीं । संस्कृत भाषा एवं साहित्य से आपकी रुचि इतनी अधिक रही कि घर में सुयोग्य पण्डितों द्वारा वेदों और उपनिषदों का सूक्ष्म अध्ययन किया । फलतः आपके चिन्तन में प्राचीन और आधुनिक भाषाओं के साहित्य

का तुलनात्मक रूप प्राप्त होता है। आपके प्रिय कवियों में वाल्मीकि, कालिदास, सूरदास, तुलसीदास, मैथिलीशरण गुप्त, पंत तथा शेक्सपियर थे। वाल्मीकि कृत रामायण का आपने दोहा-चौपाई में सुन्दर पद्यानुवाद भी किया है। इसके अतिरिक्त प्रकाशित कृतियों में उल्लेखनीय हैं—गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना, नक्षत्र (म० प्र० के कवियों का काव्य-संग्रह), सावित्रीसार (श्री अरविन्द कृत महाकाव्य का अनुवाद), श्रीमद्भगवतगीता (पद्यानुवाद), त्रिपुरी का इतिहास, मानस सुधा ('मानस' के १०८ प्रसंगों का विवेचन), तुलसी के द्वादश दल, तीन उपन्यास यथा—पंच कल्याण, युगान्तर, बदलता युग तथा आत्मकथा के रूप में 'सेवा, सृजन और संघर्ष'। इन सब कृतियों को विद्वत्-समाज ने हृदय से स्वागत कर, व्यौहार जी की स्मरणीय कृतियों में माना। इसके अतिरिक्त ग्राम सुधार, ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार, विनोबा संवाद, सर्वोदय अर्थशास्त्र, बापू की कहानियाँ, वर्षा मंगल, मेघदूत, सकल भूमि गोपाल की, मौन के स्वर, अरविन्द वाणी आदि कुछेक ऐसी कृतियाँ हैं जो आपके बहुमुखी चिन्तन को स्पष्ट करती हैं। इसके अतिरिक्त आपकी करीब ८२ कृतियाँ अप्रकाशित हैं जो प्रकाशन एवं मूल्यांकन की प्रतीक्षा में हैं। इसके बाद ही व्यौहार जी का विराट् व्यक्तित्व एवं कृतित्व उभरेगा जो उन्हें निश्चित ही प्रथम श्रेणी के साहित्यकारों की पंक्ति में रखेगा—ऐसा मेरा मत है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने आपको 'साहित्य-वाचस्पति' की सम्मानित उपाधि देकर स्वयं को गौरवान्वित किया है।

इस सब के अतिरिक्त आपका प्रेम लोक भाषा की उन्नति की ओर भी रहा क्योंकि जब सन् १९३६-३७ में टीकमगढ़ में बुन्देलखण्ड साहित्य-मण्डल की स्थापना हुई तब व्यौहार जी ने इसमें भरपूर सहयोग एवं प्रोत्साहन दिया। इसी कारण आप श्री वीरेन्द्र-केशव साहित्य परिषद् के एक स्तंभ रहे तथा अपने रचनात्मक सहयोग से सदैव समर्थन देते रहे। बाद में मैंने जब बुन्देली साहित्य सृजन के संवर्द्धन के संदर्भ में 'बुन्देली लोक भारती' नामक संस्था को संस्थापित किया तो आप न केवल उसमें शामिल हुए वरन् सदैव मुझे दिशा-निर्देश देकर प्रोत्साहन देते रहे। समता, समाजवाद एवं लोकमंगल की भावना से आपने स्व० सेठ गोविन्ददास के साथ ग्रामों की पद-यात्रा करके ३० हजार एकड़ भूमि एकत्र कर भूमिहीनों को दिलाई। हरिजन सेवा, अछूतोद्धार के प्रति आपका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक रहा इसीलिए आपने महाकौशल हरिजन सेवक संघ की स्थापना की। इतना ही नहीं, सन् १९२२ में जब श्री जमनालाल जी बजाज के द्वारा वर्धा में श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर

हरिजनों के लिए खोल दिया गया तब आपने भी अपना पैतृक श्रीराधाकृष्ण मंदिर, श्री घनश्यामदास बिड़ला एवं श्री बजाज की उपस्थिति में सर्वसाधारण के लिए खोल दिया। राजनैतिक जीवन में आप पुराने म० प्र० से तीन बार १९२७, १९३७ एवं १९४६ में विधान सभा सदस्य चुने गये थे।

महात्मा गांधी के सच्चे अनुयायी, आचार्य विनोबा के सच्चे साथी, स्वतंत्रता-समर के योद्धा तथा साहित्य के इस विनम्र सर्जक का समग्र मूल्यांकन तो आने वाली पीढ़ी ही करेगी किन्तु आज उनका अभाव बहुत खलता है तब किसी शायर की पंक्ति याद आती है—

लगती है जब धूप चिलचिलाती
तब छायादार दरख्त याद आते हैं।

कामना है, ईश्वर उनकी आत्मा को चिरशांति प्रदान करे।

—१९२ कोतवाली वार्ड, जबलपुर

रामनाथ गुप्त 'हरिदेव'

—डॉ० हरिसिंह घोष

जल बिहार के मेले की सुहावनी रंगत और छतरपुर नगर-भवन प्रांगण में सुसज्जित प्रसिद्ध साहित्यकारों से भरा साहित्यिक मंच—नागरिक अभिनन्दन का आयोजन था। श्रीफल ओर शाल भेंट करते हुए माननीय राजस्व राज्य मंत्री श्री केदारनाथ रावत ने दो वयोवृद्ध कवियों को सम्मानित किया—पं० राजाराम जी शुक्ल 'रत्नेश' और रामनाथ जी गुप्त 'हरिदेव'। यहीं पहली बार, सन् १९६९ में मैंने हरिदेव जी के दर्शन किये थे। सिर पर टोपी, आँखों पर चश्मा, लम्बा कुर्ता, बगवगी सफेद परदनियाँ और ढीली-सी जैकेट बिलकुल सादे परिधान से सजे सींक-से शरीर में रमी बुन्देली रंगों से रंगी सजीली आत्मा में इतनी आत्मीयता कि किसी को भी सहज ही में अपना बना ले। छोटा हो या बड़ा 'नमस्कार' के साथ दोनों हाथ जोड़ लेना तो जैसे उनका स्वभाव-सा बन गया था, पर बोलचाल में बुन्देली ठसक विद्यमान थी। शरीर पर उम्र का प्रभाव होना तो निश्चित ही है किन्तु दिल पर उसकी परछाईं उन्होंने नहीं पड़ने दी थी, 'पैजना धना के' अभी-भी उसी शौक से सुनाते थे।

साहित्य के इस मौन साधक का जन्म हरपालपुर निवासी श्री गजाधरलाल गुप्त के घर ३ जनवरी, १९०९ को हुआ था। यद्यपि पिता व्यापारी थे किन्तु काव्य-सृजन का गुण वंशानुक्रम से इनके यहाँ चला आ रहा था, फलतः हरिदेव जी को भी बीज रूप में प्राप्त हुआ। अपने काव्य-दीक्षा भगवद्भक्त श्री विन्दु जी से ली थी। छतरपुर में आपका विवाह तुलसी बाई से हुआ जिनसे आपके घर एक पुत्र और दो पुत्रियों ने जन्म लिया। हाई स्कूल की शिक्षा पूरी करने के बाद आपने शासकीय सेवा में पदार्पण किया। सन् १९४४ से १९४८ तक आप मजिस्ट्रेट के रीडर रहे। किन्तु, स्वतंत्र प्रकृति का व्यक्तित्व भला समय-सीमाओं में बँधकर कहाँ रह सकता, है अतः उन्हें राज्य-सेवा त्यागनी पड़ी। तत्पश्चात् व्यवसाय की ओर उन्मुख

हुए किन्तु काव्य-सृजन की लगन ने उन्हें और कहीं उलझने नहीं दिया। बस, काव्य ही उनका जीवन था। युवा-अवस्था में तो उनकी सक्रियता देखते ही बनती थी; काव्य-गोष्ठियों की सूची खुद ही घुमाना और फर्श बिछवाने से लेकर सारी व्यवस्था अपने हाथ में लिये रहना—इन कार्यक्रमों की जैसे वे धुरी थे। सारा जीवन काव्य के लिए समर्पित कर दिया था हरिदेव जी ने। म० प्र० शासन ने इस वयोवृद्ध साहित्यकार को सम्मानार्थ सौ रुपये प्रतिमाह आर्थिक सहायता प्रदान की थी। यह सहायता रु० २००/- में परिणित होकर उनके जीवन की अन्तिम घड़ियों तक चलती रही।

मंचीय हलचल से दूर एकान्त में बैठकर हरिदेव जी ने साहित्य-सृजन किया। पारिवारिक कारणवस जब वह हरपालपुर छोड़कर छतरपुर आ गये तो उन्हें यहाँ अच्छा साहित्यिक वातावरण मिला। बुन्देलखण्ड में उन दिनों प्रचलित फड़बाजी अर्थात् साहित्यिक प्रतिद्वन्दिताओं का छतरपुर में भी पर्याप्त प्रभाव था। साहित्यिक दृष्टि से छतरपुर में दो दल प्रमुख थे—पं० गंगाधर व्यास दल और पं० परमानन्द पाण्डे दल। हरिदेव जी व्यास दल से सम्बद्ध हो गये और इस दल के प्रमुख पं० राजाराम शुक्ल 'रत्नेश', रामदास दर्जी और नत्थू रंगरेज की प्रेरणा से 'सैर' रचना करने लगे। अतः साहित्यिक प्रतिस्पर्धा के कारण भी बहुत कुछ लिखा। वृद्धावस्था के दिनों में भी लिखने और सुनाने-सुनने का शौक बराबर बना रहा। चलने की सामर्थ्य उनमें जब तक रही वे नित्य सायं चार बजे मामुलिया के सम्पादक डॉ० नर्मदा प्रसाद गुप्त के घर जाकर लगभग एक घंटे बैठते और कुछ न कुछ सुनते-सुनाते रहते।

हरिदेव जी ने खड़ी बोली और बुन्देली में रचनायें लिखी हैं। साहित्य में प्रचलित बृजभाषा में भी उनकी रचनायें हैं किन्तु वे स्वयं भी उसे बुन्देली कहा करते थे। उनकी रचनायें इस प्रकार हैं—

(१) प्रबन्ध काव्य—दुर्गावती

(२) मुक्तक काव्य—करवाल किरण, बुन्देलखण्ड बावनी, रस विन्दु, राष्ट्र पताका

(३) काव्य संग्रह—मन के मीत, सैर-सौरभ

इसके अतिरिक्त बहुत-सी स्फुट रचनायें हैं जिनमें कुछ सुकवि, राष्ट्रधर्म,

तुलसीदल आदि में प्रकाशित हुई हैं। 'करवाल किरण' विन्ध्य प्रदेश शासन द्वारा सन् १६५३ में पुरस्कृत की गई थी।

अनूठी काव्य प्रतिभा के लिए आपको उपाधि तथा पुरस्कारों से अनेक बार सम्मानित किया गया। सर्वप्रथम सन् १६४६ में अयोध्या से आपको 'काव्य भूषण' की उपाधि प्राप्त हुई। सन् १६४७ ई० में तुलसी समिति हरपालपुर ने 'स्वर्ण पदक' एवं सन् १६४६ ई० में नारायण मण्डल, हरपालपुर ने 'रजत पदक' से आभूषित कर सम्मानित किया। सन् १६५३ ई० में विन्ध्य प्रदेश शासन ने आपके मुक्तक काव्य 'करवाल किरण' को पुरस्कृत कर आपको प्रान्तीय सम्मान से विभूषित किया। सन् १६६६ ई० में अखिल भारतीय कवि सम्मेलन (मेला-जलविहार) छतरपुर में आपका नागरिक अभिनन्दन किया गया।

रससिद्ध कविवर हरिदेव जी पुरानी पीढ़ी के जीवन्त कवि तो थे ही, साथ ही तत्कालीन परिस्थितियों में भी वे सजग दिखाई देते हैं। उन्होंने मंचों पर काव्य पाठ तो किया किंतु मंचीय रचनाओं का सृजन नहीं किया। मेरा मतलब मात्र मंचीय प्रदर्शन के निमित्त उथली रचनायें लिखने के पक्ष में वे नहीं थे। साहित्य-सागर में गहरी पैठ रखकर मंदिर के नीख दीपक की भाँति जीवन भर उन्होंने एकान्त में रहकर साहित्य-साधना की। अपना मन्तव्य न देते हुए उनकी रचनाओं की कुछ बानगी यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ—

(१)

युगल चरण वंदना—

जौ लों भव्य भूतल पै व्योम को वितान रहै,
जौ लों व्योम बीच चारु चन्द्रमा करै बिलास।
जौ लों चारु चन्द्रमा में षोड़स कला हैं, जौलों,
षोड़स कला में राजै छवि को ललित हास॥
जौ लों हास मध्य 'हरिदेव' शीतलाई शुचि,
जौ लों शीतलाई कल कुमुद करै विकास।
तौ लों भय भंजन श्री राधिका-गुपाल जू के,
चरन सरोजन को हिय में रहै निवास॥

(२)

त्रिवेणी रूप में तलवार—

सहजहिं साँवरे के गुण सों संयुक्त शुद्ध,
अंशुमाल तनया की आभा दिखरात है।
कीरत कलित भव्य भासती भगीरथ सी,
अरि रक्त रंजित सरस्वति लखाति है॥
छिन ही में जवन जमात पाप काटिवे को,
पर्व योग सरिस उमङ्ग सरसाति है।
भाषै 'हरिदेव' तीर्थराज क्षेत्र सङ्गर में,
छत्रसाल तेग यों त्रिवेणी बन जाति है॥

(३)

लक्षिता नायिका—

बाल तव आनन पै श्रम जल जालन के
झलकत बिन्दु सोउ श्रम ते निबेरे हैं।
बिथुर सुबैनी लौं बतावत है मेरो बीर
तीर पै कलिन्दजा के मोर बहुतेरे हैं॥
'हरिदेव' बिम्ब धर कीर छतवंत कीन्हें
बंद कंचुकी को तहाँ बंदर घनेरे हैं।
उरज उठेरी ये नखक्षत लगेरी तौन
कौन से पुजेरी सों पुजेरी शम्भु तेरे हैं॥

(४)

राष्ट्रीय भाव—

लघु उद्योगों को बल देकर राष्ट्र सुदृढ़ सम्पन्न बनाओ।
आश्रित नहीं, किन्तु आश्रय दाता हो इतना श्रेय कमाओ।
उज्जवल करो भविष्य राष्ट्र का, और स्वयं ऊँचे उठ जाओ।

(५)

लावनी—

लखे सुधा के भरे पियाले मतवाले करने वाले।
कै पूनो के पूर्ण चन्द्र बिच दो सरोज पै अलि काले।

—मु० घोसियाना, छतरपुर (म० प्र०)

शारदा प्रसाद उदैनियाँ "मनोज"

—रामजी लाल चतुर्वेदी

मनोज जी कालेज में व्याख्याता तो थे ही किन्तु कालेज भर के ही छात्रों को पढ़ाना-समझाना उनका काम न था। वे तो रास्ते में जिसे मिलें, उसी को कुछ न कुछ बतलाये बिना आगे नहीं बढ़ सकते थे। घर पर भाभी जी श्रीमती अवधकुमारी सब्जी के लिये बैठी रहें, बच्चे बाट जोहते रहें, रिश्तेदार मिलने वाले घर से ऊबकर चले जायें, मगर कहीं काव्य-चर्चा चल पड़ी तो मनोज जी उसे छोड़कर जाने वाले नहीं। किसी की कविता अथवा शायरी में कहीं थोड़ा-सा दोष देखा कि कहे बिना रह कैसे सकते थे। यही कारण है कि हम सभी हिन्दी-उर्दू के लेखक उन्हें दादा कहते थे। जाने क्या बात थी, जिस दिन मिल जायें और जब तक उनसे दो-एक बार मूर्ख-गधे सुनने को न मिले, तब तक चैन नहीं पड़ता था। अन्त के दिनों में तो व्याकरण और भाषा विज्ञान का चमत्कार उनमें देखने को मिलता था। कोई बीमार, परेशान, उदास हो तो मनोज जी भी उसके साथ पूरी तरह हो जाते थे। साहित्य या कविता रचने के साथ-साथ वे कविता जीते थे।

मनोज जी के साहित्य के विषय में शीघ्रता से कुछ कह पाना सरल नहीं है, यद्यपि असंभव भी नहीं। वे आकाशवाणी से तो जुड़े ही थे, उन्होंने सैकड़ों कवि-सम्मेलनों में काव्यपाठ किया। उनकी कवितायें जगह-जगह टेप की गईं होंगी। उनके मित्र देश भर में फैले हुये हैं, उनसे भी सहायता लेनी होगी। उन्होंने लेख, कहानी, नाटक इत्यादि थोड़ा-बहुत सब कुछ लिखा, किन्तु वे सच्चे अर्थों में कवि ही थे। कविता में सब कुछ लिख सकते थे। खण्डकाव्य जैसे "विस्मृता", गीत अनुमानतः दो सौ, गजल, बुन्देलखण्डी गीत। कुछ अतुकान्त नई किस्म की कवितायें भी। काव्य में सर्वत्र ही उनकी प्रगतिशील विचारधारा के दर्शन होते हैं। छतरपुर में प्रगतिशील लेखक संघ की शाखागठन होने के लिए हमारे साथी प्रमोद पाण्डेय उनके पास गये।

उनके शिष्य भी हैं "जैसे सुरेन्द्र शर्मा शिरीष" मित्र कमालुद्दीन निजामी साहब, व्यास जी, श्रीनिवास जी भी।

प्रमोद से त्यागमूर्ति मनोज जी ने कहा कि मैं तुम्हें अध्यक्ष पद के लिये रामजी लाल चतुर्वेदी का नाम सुझाता हूँ। सब लोग मुझे लिवा गये और मैं इस प्रस्ताव से अचंभे में पड़ गया कि 'मैं कब का प्रगतिशील हो गया।' उन्होंने घूम-घूम कर करीब-करीब सभी हिन्दी और उर्दू के साहित्यकारों को सदस्य बनवा दिया।

यह बात नहीं है कि मनोज जी शृंगार, करुण या अन्य रस की कविताओं में कम रुचि रखते हों। जहाँ भी कविता संभव हो, वहाँ मनोज जी मौजूद होंगे। कबसे लिखते हैं? कोंच (यू० पी०) के लोग मानते हैं कि मनोज जी जब कक्षा ७ में ही पढ़ते थे तो कविता लिखने लगे थे। किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि जब वे छतरपुर आये थे, तो १९५५ में ही परिपक्व कवि थे। जहाँ देखिये, तहाँ मनोज जी की कविताओं की धूम थी। सड़क पर या किसी पुलिया पर बैठ गये, दस-पच्चीस लोग बैठकर उनकी कवितायें सुन रहे होते। मनोज जी न तो सुनाने में थकते थे, न सुनने वाले सुनने से। रात के बारह बज गये तो कहते—'अच्छा भई, चलो, सुनो रामजी अब ऐसा करो कि होटल पर चलकर दो-चार रोटियाँ खा पी लो। अब कहाँ फिरोगे। मैं लिखने की कोशिश करता था, किन्तु उनसे डरता बहुत था। अगर अति उत्साह में कोई उन्हें काव्य-पाठ करते समय दाद दे दे, तो उसे भी कुछ-का-कुछ कह डालते थे। बहुत दिनों बाद सन् १९६० के आस-पास मेरा डर छूटा। उन्हें लिखकर सुनाने लगा और वे दूसरों की तरह मुझे भी सुझाव देने लगे थे। कवियों के भाग्य से चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया। हजारों कवि मँडराने लगे। चीन को गालियाँ देना, चाओ माओ मुर्दाबाद कहना अथवा हम चीनियों को चीनी की तरह पी लेंगे कहना, वह भी तुक भिड़ाकर कविता कहलाती थी। हम जैसे छुटभैयों के रजिस्ट्रेशन हुये। उस दौर में कवितायें तो बहुत लिखी गईं, किन्तु मनोज जी की कविता 'चीन को चुनौती' बेहद सफल और सराही गई। यह तो प्रत्येक श्रोता जानता है कि मनोज जी को इसकी परवाह नहीं थी कि कोई क्या कहेगा। उन्हें फूहड़ हास्य और हल्कापन भाता ही नहीं था। कहीं होता भी तो कष्ट के साथ सहन करते थे। हिन्दी के विशेषज्ञ होते हुये भी उर्दू के शब्दों से परहेज नहीं था, बल्कि उनका बड़ा सार्थक उपयोग करते थे। वे गर्व से कहा करते थे कि मुझे उर्दू की तालीम हिन्दी की ही तरह मिली है।' आदतें विचित्र थीं—कहिये, किसी

सम्मेलन में बिना कुछ लिये-दिये चले जायें, कहिये कोई कितने ही रुपये देता रहे, अस्वीकार कर दें। दो विचित्र बातें थीं। जासूसी उपन्यास दिनरात हाथ में तथा मुंह में सुलगती हुई बीड़ी। डाक्टरों ने उन्हें रोका, लेकिन उन्हें डाक्टर भी नहीं समझा पाते थे। हार्ट के मरीज तो हो ही गये थे, किन्तु आशावादी होने के नाते कभी मौत का भय नहीं रहा। खूब खाते थे, खिलाते थे। कहते थे बिना चाट खाये कविता कैसे आ सकती है।

उनके जीवन की सारी विशेषताओं को काव्य में देख सकते हैं। आशावादी और प्रगतिशीलता के दर्शन तो उनके समूचे काव्य में होते हैं। सन् १६५५ में हृष्ट-पुष्ट कड़क आवाज में माइक भन्ना जाता था सुनकर—

'बहुत है अपने पर विश्वास, अडिग है अपने पर विश्वास'
मंदिर मान वही झुकते हैं जिन्हें कि जीवन में झुकना है।
मंजिल मान वही रुकते हैं जिन्हें कि जीवन में रुकना है।
चाह नहीं ऐसे अंबर की जिसको पाने में थक जाऊँ
स्वयं उतर आयेगा धरती पर मेरा आकास। मुझे है.........

किन्तु यह बात स्पष्ट है कि वे जल्दबाज और उछल्ले प्रगतिशील नहीं थे। उन्हें समझने के लिये श्रोता को दिल के साथ दिमाग भी लाना पड़ता था। 'मेरे गीत बहुत गहरे हैं।' उनका यह कथन मिथ्या न था। श्रृंगार भी है तो एकदम सजा हुआ झुमा देने वाला, अश्लीलता से कोसों दूर—

'मुक्ति के सपनों से भी मधुर प्रीत का बंधन होता है।'
वातियाँ कह देती अधजली किसी ने दीप संजोया है।
झुरियाँ बतलाती हैं यही यहीं पर यौवन सोया है।

एक अन्य कविता में दूसरे ढंग से—

'तन से दूर तुम्हारे लेकिन फिर भी मन के पास हूँ।
ममता के बंधन में बाँधा अनबाँधा सन्यास हूँ।
तरु से टूटे हुये पात सा मुरझाया मधुमास हूँ।'

हर गीत जड़ा हुआ। एक शब्द इधर-उधर नहीं हो सकता गीतकार का। वीर रस या देशभक्ति में भी उनमें अंधापन नहीं था। उनकी चीन पर कविता पढ़ने पर पचासों बार तालियाँ बजती थीं। किसी पंक्ति में संस्कृति उभर पड़ती थी तो किसी में भारतीय शौर्य। चार सौ लाइनों की कविता—

'जग भर के भाई होने के पहिले हम हिन्दुस्तानी हैं।'
'टकराओ तो फौलादी हैं मिलने आओ तो पानी हैं।'
'जय और पराजय फिर होगी पहिले तो महाप्रलय होगी।'

मनोज जी हमेशा क्रान्ति की ही बात नहीं करते थे, वे कभी यह सलाह देते थे, 'संघर्षों का युग बीत गया, निर्माण करो, निर्माण करो।' मन्त्री, नेता सभी के लिये फटकार है उनकी कविता में, किन्तु किसी जगह कोरी नारेबाजी नहीं। साहित्य हर पंक्ति में होगा ही। 'अर्थ व्यवस्था की चादर में कितने ही पैबन्द लगे हैं' और 'ओ सुविधा के राजकुमारो भाषण जिन्दाबाद तुम्हारा।'

सरकारी नौकरी में थे तो क्या? अपने देश की लूटपाट आँख मूंद कर देखते रहते। गजल के चन्द शेर :—

'बाहर से आ तैमूर ने लूटा था एक दिन
अब मुल्क में ही सैकड़ों तैमूर हो गये।
है अपने रहनुमाओं के मरहम का ये कमाल
जो घाव भरने वाले थे नासूर हो गये।
अब फाकाकशी, दर्देजिगर और ये घुटन
इस जिन्दगी की लाश के दस्तूर हो गये।'

आध्यात्मिकता, विरसता ने भी जीवन में पदार्पण किया, किन्तु उन्होंने उसे एक सीमा तक ही आने दिया। कविता की दृष्टि से तो मनोज जी ने एक गीत में कमाल ही कर दिया है :—

'ऐसी बढ़ी विरसता जीवन रीता-रीता-सा लगता है।
हर क्षण उत्तर रामचरित की आकुल सीता-सा लगता है।'

अध्यात्म भी जन-जन का गीत और उनका अनकहा दर्द दर्शाने के लिये है :—

'जलधर बरसे तो क्या बरसे हर चातक रह गया पिपासित
गीत हो गया व्यर्थ, रह गया जो अनकहा दर्द जन-जन का
फूल सभी निर्गन्ध डाल पर मुस्का-मुस्का कर मुरझाये
केवल भार बना धरती पर ऐसा चमन दिया ही क्यों था?

× × ×

जिसका ग्राहक मिला न कोई, ऐसा रतन दिया ही क्यों था?'

मनोज जी राबर्ट फ्रास्ट (एक अमेरिकन कवि) की तरह सदा सोने के पहिले कलम चलाते रहे, चलाते रहे—राबर्ट फ्रास्ट—'बहुत दूर जाना है मुझको सोने के पहिले' मनोज जी - 'तब से सदा चला ही हूँ मैं जब से यहाँ आँख है खोली' रास्ते में उन्हें कोई डर नहीं रहा, क्योंकि उन्होंने पीड़ा का नामकरण 'सुख' कर लिया था। पत्थर और काँटे उनकी गति अवरुद्ध नहीं कर सकते थे, क्योंकि उन्हें उनका परिचय था तथा वे सभी उनके हमजोली बन चुके थे—

'पीड़ा सहनशक्ति से बढ़कर सुख का नामकरण ले बैठी
हर पत्थर मेरा परिचित अब हर काँटा मेरा हमजोली।'

ऐसे जीवट के कवि थे हमारे मनोज जी। उनके आशावाद को हम लोग कैसे पा सकते हैं। थोड़ी-सी झंझट हुई घबड़ा गये, अब हमें कौन समझायेगा। यदि हमने उनके साहित्य की उपेक्षा की, उसका प्रकाशन न हो सका तो हमें भी दर्द के साथ कहना पड़ेगा—'जिसका ग्राहक मिला न कोई ऐसा रतन दिया ही क्यों था?'

३१ अगस्त, १९८८ को मनोज जी हमें अपना काव्य-शरीर सौंप कर चले गये। उनके परिवार ने उनका दिन-तेरहवीं श्रद्धा के साथ कर दिया। देखना यह है कि हम कवि, शायर, साहित्यकार जिनके सही मायनों में परिवार-जन हैं, मनोज जी के स्वर को किस प्रकार अमर बनाते हैं—

'गीत गा लूंगा मगर तुम साज दे देना।
मुस्करा कर जिन्दगी का राज दे देना।
मैं लहर-धारा-भँवर सब पार कर लूंगा,
तुम किनारे से तनिक आवाज दे देना।'

—चौबे कालोनी; छतरपुर

गहरी छाप के व्यक्तित्व : पं० रामेश्वर गुरु

—डॉ० कृष्णाकान्त चतुर्वेदी

⊙

जबलपुर नगर के अधुनातन जीवन पर जिनकी प्रत्यक्ष और गहरी छाप पड़ी है उन व्यक्तियों में सेठ गोविन्ददास, पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र, पं० कुंजीलाल दुबे, श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान, पं० भवानीप्रसाद तिवारी और पं रामेश्वर प्रसाद गुरु अग्रगण्य माने जा सकते हैं।

पं० रामेश्वर प्रसाद गुरु का नामोल्लेख करते ही एक ऐसे व्यक्तित्व का चित्र उभरता है जो वेशभूषा में अत्यंत सामान्य, वस्त्रों के प्रति पर्याप्त असावधान, कन्धे में एक झोला लटकाये, बुन्देली भाषा के माधुर्य का वार्तालाप का परिचय कराते हुए, सामान्य व्यवहार में असामान्य व्यक्तित्व की अनुभूति का जनक, सहज आत्मीयता से आकंठ डूबा हो और सभी को डुबाने वाला हो।

उनसे बात करना सदैव एक असाधारण सुखद अनुभूति सिद्ध हुई है। सीधी-सादी भाषा का प्रयोग करते-करते अचानक उनके भीतर का अपरिमित ज्ञान आवश्यकतानुसार अपनी भास्वर झलक दिखा देता था। वे उस विदग्धता की स्थिति में पहुँचकर पुनः उसी तरह से सहज हो जाते कि उनके ज्ञान से लाभान्वित होने वाले व्यक्ति को लघुता की अनुभूति तो होती ही नहीं थी, अपितु वह जैसे भीतर तक ज्ञान-वृद्धि की आत्मीय अनुभूति प्राप्त कर लेता था।

पं० रामेश्वर गुरु जबलपुर में ही जन्मे, पले, बड़े हुए और अपना अध्ययन एवं व्यक्तित्व-निर्माण भी उन्होंने यहीं किया। उन्हें अपने परिवार में ही जिस प्रकार का वातावरण मिला, वह दुर्लभ है। हिन्दी व्याकरण के प्रथम ऋषि पं० कामताप्रसाद गुरु के पुत्र होने का सौभाग्य उन्हें मिला था। परिणामतः उनके घर में विद्वानों का जमघट लगा रहना स्वाभाविक था। दूर-दूर से हिन्दी के विद्वान् उनके पास आते, ठहरते और ज्ञान-चर्चा होती। देश भर में चलने वाले साहित्यिक आन्दोलनों का प्रभाव उन पर सहज रूप से पड़ता। भाषा-प्रयोग के सम्बन्ध में असाधारण जागरूकता उन्हें उत्तराधिकार

में मिली थी। विज्ञान के विद्यार्थी होने के नाते तथा उस समय के वातावरण के अनुकूल अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त करना भी उनके लिए जरूरी था। साहित्यिक मानसिकता और भाषा के प्रति आग्रह के कारण अंग्रेजी भाषा और साहित्य की भी उनकी समझ बड़ी गहरी थी। वे अनेक विद्वान् व्यक्तियों के लिए प्रमाण-पुरुष थे। अभिव्यक्ति की गहरी समझ और असाधारण जागरूकता के कारण उनके व्यक्तित्व में एक उत्कण्ठापूर्ण अन्वेषण का आविर्भाव हो गया था। उसमें और अधिक पैनापन एवं व्यापकता उनके पत्रकार जीवन ने ला दी थी।

यह बात तो पर्याप्त बाद की है, जब वे पत्रकार बने। उनकी तरुणाई ने वे वर्ष देखे थे, जब सारा भारत स्वतन्त्रता-संग्राम में बहुत गहराई से डूबा हुआ था। पूरा देश एक व्यक्ति बनकर एक श्वास में जीवन जी रहा था। एक शरीर बनकर गतिशील हो रहा था। जब वृद्धों में भी लड़ने का उत्साह उन्हें तरुण बना रहा था, तब आजादी के दीवाने तरुणों का क्या कहना। उनके आराध्य महात्मा गांधी जी और नेहरू जी तो थे ही, परन्तु प्राण थे नेताजी सुभाषचन्द्र बोस और धमनियों में रक्त दौड़ता क्रान्तिकारियों के कार्यों से उत्पन्न प्रेरणा का। ऐसे वातावरण में पं० भवानीप्रसाद तिवारी, पं० रामेश्वर गुरु, श्री सवाईमल जैन, डॉ० डिसल्वा आदि व्यक्तियों के अन्दर रचनात्मक क्रान्तिकारी शक्ति का निर्माण हुआ। उस पर शान चढ़ी त्रिपुरी के कांग्रेस अधिवेशन से। पं० गुरु के व्यक्तित्व में इन सभी संवेगात्मक परिस्थितियों का ताना-बाना तो था ही, परन्तु उस पर कोमल कल्पनाशील रंगों को भरा था उनके कवि व्यक्तित्व ने। श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान के गीतों के साथ एक नया स्वर फूट पड़ा अपने तीव्र बलिदान की आकांक्षा लिये 'कुमार हृदय' का। कितने ही गीत पं० गुरु जी ने लिखे, यदि उन सबका संकलन एकत्र कर लिया जाये तो देश के स्वतंत्रता-संग्राम से लेकर जीवन की अन्तिम श्वास तक की राष्ट्रीय परिधि में सभी उद्वेलनकारी घटनाओं के उत्ताप का अनुभव और उसके दृश्य की भयावहता का साक्षात्कार किया जा सकता है। उसमें महात्मा गांधी तथा श्रीमती इंदिरा गांधी की बलिदानी हत्याओं को भी शामिल किया जा सकता है।

व्यवसाय से पं० गुरु जी ने शिक्षकीय जीवन स्वीकार किया, कर्म से दु:खी समाज की सेवा तथा अभिव्यक्ति से पत्रकारिता। इन सभी विभिन्न क्षेत्रों के अनुभवों के साथ-साथ वामपन्थी राजनैतिक सिद्धांतों के प्रति प्रबल आस्था

तथा प्रामाणिक जीवन जीने के अविचल संकल्प ने उनको अन्यों से असाधारण बना दिया था। वे जिस भी क्षेत्र में सक्रिय हुए, उसमें उनकी छाप अमिट सिद्ध हुई। वे आज भी उन सभी क्षेत्रों में आदर्श तुल्य हैं।

नगर ने उल्लास और संकट की घड़ी में पं० गुरु और उनकी मित्र-मंडली को हर तरह से उपस्थित और सन्नद्ध पाया है। नगर की कोई स्मारिका मूल्यवान् नहीं बन पायी, यदि पं० गुरु जी का उसमें योगदान नहीं रहा। नगर से प्रकाशित होने वाले लोकमत, प्रहरी से लेकर अब तक के सभी समाचार-पत्र पं० गुरु जी के सहयोग से कृतार्थ हुए हैं। कोई भी साहित्यिक संस्था पल्लवित और पुष्पित हुई है तो पं० गुरु जी के सहयोग से। कितने ट्रस्ट, कितनी संस्थाएँ उनका मार्गदर्शन पाकर विकसित हुई हैं। रतन श्री डिसल्वा शिक्षण संस्था, महाकौशल शिक्षा प्रसार समिति और जानकी रमण ट्रस्ट इसके जीवन्त उदाहरण हैं।

नगर-निगम के महापौर के रूप में उन्होंने जिन सिद्धान्तों और मूल्यों का पालन किया, वे असाधारण हैं। आज के राजनैतिक जीवन में व्याप्त कदाचार को देखते हुए उनकी प्रामाणिकता, नि:स्वार्थ सेवा-भावना, अहर्निश समर्पणात्मक वृत्ति आदर्श के रूप में उनका स्मरण कराती थी। वे अपनी पुरानी साइकिल को अधिक आत्मीय मानते थे नगर-निगम के बड़े मूल्यवान् वाहन की तुलना में। उनकी सादगी, विनम्रता आज भी अनुकरणीय रूप में उपस्थित है।

पं० गुरु जी के व्यक्तित्व का एक और असाधारण पक्ष रहा है मित्र-स्मरण का। उन्होंने नगर के श्रेष्ठ व्यक्तित्वों को श्रेष्ठ रूप में स्मरण करने का वातावरण बनाया। अभिनन्दन समारोहों, स्मारिकाओं के बड़े-बड़े आयोजनों में उनका विनम्र संकोची स्वभाव सब-कुछ करने, पूरे सूत्रधार बने रहने पर एक कोने में चुपचाप बैठ जाने को उन्हें प्रेरित करता और नगर भर की आँखें ऐसे कर्मठ तपस्वी के संकोच को तोड़कर बलपूर्वक उन्हें मंच तक खींच लातीं।

दिवंगत मित्रों का स्मरण उनकी उपासना-पद्धति का महत्त्वपूर्ण सोपान था। डॉ० डिसल्वा और पं० भवानीप्रसाद तिवारी की स्मृति को चिरस्थायी बनाने की साधना उन्होंने निरंतर की। इस नगर में अपने साथियों के व्यक्तित्व को निखारने का काम तो उन्होंने किया ही, कुछ व्यक्तित्वों के निर्माण में भी

उनकी असाधारण भूमिका रही है। उनमें श्री निर्मल नारद, श्री राजेन्द्र तिवारी एडवोकेट, श्री दुर्गाशंकर शुक्ल, डॉ॰ गोविन्द प्रसाद मिश्र आदि अनेक नामों में कुछ नाम हैं जो पं॰ गुरु जी का स्मरण इस रूप में बड़ी श्रद्धा से करते हैं। इस लेख का लेखक भी अपने-आप को उनसे उऋण अनुभव कभी नहीं कर सकता। ऐसे विविधवर्णी महिमा मण्डित साथ ही अत्यन्त विनम्र व्यक्ति का पुण्य-स्मरण नगर के गौरव की अभिव्यक्ति के लिए तो है ही, साथ ही अपने आपकी कृतार्थता के लिए भी है, ऐसा मैं अनुभव करता हूँ। निश्चय ही यदि नगर ने कृतज्ञतापूर्वक उनका स्मरण किया, उनके आदर्शों का पालन किया तो वह अपनी परम्परा और अस्मिता को सुरक्षित रख पायेगा।

मैं छोटो सो गांव रे

—आशाराम त्रिपाठी

⊙

मैं छोटो सो गांव रे ॥
कैंबे हाँ अपनो सुख को सपनो आफत की छांव रे ॥

मैनत नें माँटी सें मिलकें नओ संसार रचाओ।
चाओ जैसो वैसो अपनो नौनों चित्र बनाओ ॥
पै रंग उड़ गये और ठौर हैं सूनी इतै लकीरें।
अपने हांतन लिखीं हैं मैनें औरन की तकदीरें ॥
कैसो सब को आंव सुनै न कोऊ कियैं सुनांव रे ॥

पी गये लाज अंग मोरे सब निरबल निपट इकारे।
सामू निकरत एकई से गरमी वरसा जड़कारे ॥
सूत कपास दओ औरै न पास में एक बिछौना।
छौना तरसत तीपै कर कर जात गरीबी टौना ॥
लयें अभाव की दुनियाँ कर में दुनियाँ भर सें कांव रे ॥

अपनो घट रीतो रओ औरन के घर में रस डारो।
दूध पिबाओ सांपन हाँ अँसुआ पी समय निकारो ॥
डँस रये वेई हमें अब नस नस में ऐसो बिस व्यापो।
कीसें कांव विथा हों ऐसो ज्यों चेंपा नें चापो ॥
अपने पूरब के दिन गुन-गुन सोचों अरु पछतांव रे ॥

राह दिखावे के लानें जो आओ नओ उजयारो।
का कीसें कइये बड़ गओ ईसें दूनो अंदयारो ॥
लगी पुंजी में गुंजी चार दैकें दो लो न पाये।
चकाचोंद में भटक गये भौतक गरगट्टे खाये ॥
सच्चाई सब चली गई कऊँ, धर कें पोले पांव रे ॥

गये गुलाब के दिन अब जातौ फूलत-फलत धतूरौ।
चमगादर बोलत मंदिर में, लगौ महल में घूरौ॥
रो रओ आज बसंत हँसै पतझर मुख शोक मनाबै।
रैन अमावस पावस में सूरज हाँ दिया दिखाबै॥
गुन-औगुन के गुन गाबै, अब मैं कीके गुन गाँव रे॥

लच्छन बदल गये पच्छिम ने ऐसी धूम मचाई।
हंसन की बैठक में अब. कौअन की लगत अथाई॥
पैर चुनरिया शाकाहारी खौंचें दया दिखाबैं।
परहिंसा न करौ-डरौ जो बगुला भगत बतावैं॥
हो गई बिदा कुहुक कानन में गूंजत काँव-काँव रे॥

करने को हाट बाजार चलि दई सजि-बनि के

—आजाद रामपुरी

⊙

करि सोलह सिंगार गोरी बनि-ठनि के।
तेरे नखरे कई हजार, थकि गये गिन-गिन के॥
रूप दमकि रहो घूंघट में सें, फूल खिलौ ऐसो झुरमुट सें।
ज्यों चन्दा उजियार, झरि रहो छनि-छनि के॥
करि सोलह सिंगार...... ॥

ठसक ठसीलौ रूप रसीलौ, भड़कीलो तन, रंग रंगीलौ।
चमकि रहो ज्यों बिजली तड़के, झिलमिल तेरो बदन गठीलौ॥
तेरो यौवन खरौ कल्दार, गोरी बनि-ठनि के।
वो महके ज्यों कचनार, गोरी बनि-ठनि के॥

मुख पर केश लटों के झूले, होठों पर महुआ वन फूले।
रोम-रोम पाँखुरीनुमा है, सिर जूड़े ज्यों किले-कंगूरे॥
चेहरा कलीदें की फार, गोरी बनि-ठनि के।
चमके बिन्दिया-हार, गोरी बनि-ठनि के॥

बाँकी नजर, नयन कजरारे, भौंहें तोर कमान सम्हारे।
गाल लाल ज्यों सुर्ख टमाटर, मारि रहे जीवन चटखारे॥
तेरो पेट है चिकनौ पठार, गोरी बनि-ठनि के।
तोइ देखत चढ़े खुमार, गोरी बनि-ठनि के॥

अँगड़ाई की लचक रसीली, लाल मिर्च-सी नाक नुकीली।
नकुअनि में नथुनी यों लटकी, बाम्बी में साँपिन जहरीली॥
ज्यों बैठी कुण्डलीमार, गोरी बनि-ठनि के।
तेरो सब कुछ खुसबूदार, गोरी बनि-ठनि के॥

गोरो बदन तेरो मीठो छुआरो, पहनि घाँघरो घुम घुमारो।
रेशम डोरी कसी कमरि में, तामें साठि हाथ को नारो॥
ज्यों चौकस पहरेदार, गोरी बनि - ठनि के।
बजे बिछुअनि की झंकार, गोरी बनि - ठनि के॥

एक मसखरा यों उठि बोलो, करन हाट क्यों इत-उत डोलो।
यौवन फूलि भयो कदरी बन, ये तो तब जब भयो न गौनो॥
अरे तेरो अंग - अंग गुल्जार, गोरी बनि - ठनि के।
हम ग्राहक खिदमतगार, गोरी बनि - ठनि के॥

—ललितपुर कालोनी, ग्वालियर

मन की मन में रै गई

—जगदीश रावत

⊙

हम का कयें हमारे मन की, मन की मन में रै गई।
उड़त चिरैया करत चोंचले चिचया कें जा कै गई॥

रै गये हम सूखी नदिया से तड़प-तड़प कें प्यासे,
गर्रा बैला से बिचकत हैं खाकें मौआ बासे।
नाचत बन में मोर सरीखो जियै कोऊ न देखत,
आन गाँव की सिद्ध और घर के खों जोगी लेखत।

खुद सें बातें करत दिनई में हम देखत हैं सपने,
अपने लगत पराये हम खों गैर लगत हैं अपने।
किस्मत की लम्बी रेखा न जाने आज किते गई,
हम का कयें हमारे मन की, मन की मन में रै गई॥

बन गये निरे निखट्टू कल के मेधावी लरका हम,
जैसे नदी और नरवा हैं वैसेई रये भरका हम।

किये सुनायें दुखड़ा अपने भाग हमारे फूटे,
दोष कोउ खों का देवें हम जब अपने हमसों रूठे।

मन रो रओ पर होंठ हँसत हैं अँसुआ आँखन सूखे,
भटकत फिरें बने बैरागी रहे प्यार के भूखे।
प्यासी आँखन में होकें अँसुअन की धारा बै गई,
हम का कयें हमारे मन की, मन की मन में रै गई॥

—काष्ठागार अधिकारी
बरगवाँ, सीधी

घर को परसइया, अँदयारी रात

—रतिभानु तिवारी 'कंज'

⊙

घर को परसइया और अँदयारी रात।
भसकें जा बड़े कौर, कढ़ी बरा भात॥

पेंड़ गये उजरा बे छेंके खों ठोर।
घर गये चरीखर सब माते के ढोर॥
अड़िया में बल होय लठिया में पोर।
भैंस साथ दद्दा की दुपरै लों छोर॥
कोंड़े पै कैरयते कक्का कानात।
घर को परसइया और अँदयारी रात॥१॥

पंडित खों बड़े भोर दैबे गये सीदो।
बिगरी सब लौट और जजमान बीदो॥
दान और दच्छना पै पंडित खों ताव।
न सूरा नेंवतो न दो जनें बुलाव॥
होम करत हात जरे अचरज की बात।
घर को परसइया और अँदयारी रात॥२॥

माते और मुखिया में लगी आज होड़ ।
कब कैसी लग जाय, आँदरे की लोड़ ।।
बारा हैं माते और तेरा अथांइं ।
परमू ने पंचन खों चोखीं सुनाइं ।।
पातर में छेद करें जीमें जे खात ।
घर कौ परसइया और अँदयारी रात ।।३।।

नरदा की मुखिया नों करी बिन्तवारी ।
भगौ हांत मींड़त वौ वखरी खोंहारी ।।
वेबूझ मुखिया नें करदव कुन्याव ।
न लेव चोंटिया न वकटौ भराव ।।
सावन के अँदरन खों, हरीरौ सुजात ।
घर कौ परसइया और अँदयारी रात ।।४।।

घर की कुरइया सें फूट रई आंख ।
धुंदा रई वखरी, हो रओ घर राख ।।
मदारी वन वैठे हैं, मठ के महंत ।
मंदिर के वाबाजू जवरंइ गये अंत ।।
कौअन की फौज में हंस न पुसात ।
घर कौ परसइया और अँदयारी रात ।।५।।

बिजना लै बैठे ते मांछी भगावे ।
जुर परे वेइ आज टाठी में खावे ।।
अर्जुन खुद खेंच रए द्रोपदी की सारी ।
भसम होत आगी में सीता विचारी ।।
खेत कौ बिजूकौ अव खेती खों खात ।
घर कौ परसइया और अँदयारी रात ।।६।।

—पृथ्वीपुर, जिला टीकमगढ़, म० प्र०

वारो सो हो जाऊं

—वैजनाथ गोतम 'वैजू'

येंसो लग रओ मैया मोरी वारो सो हो जाऊं,
अँगना में गुड्डा-गुड़ियन को फिर सें व्या रचाऊं ।

रतियन में राजा-रानी की दादी कहै कहानी,
भुंसारें सें उठकें खेलें इत्तन-इत्तन पानी,
कक्का की कैयां में चढ़कें राजा कुंअर कहाऊं ।

चढ़-चढ़ री मकरन्दो रानी छुटपन भर चिल्लाये,
उमर वीत गयी इतनी भैया अर्थ समझ नै पाये,
अटकन-चटकन दही चटोकन जिन्दगानी भर गाऊं ।

सेरी के पंसेरी कह कें पांव पै झूला झूलें,
भैया की वस पींठ पै चढ़कें सारी दुनिया भूलें,
कवरी गैया की वछिया सें गलवहियां लिपटाऊं ।

गलियों में गुल्ली-डंडा अमुआ पै अंडाडारी,
रंग-विरंगे कंचा मोरे कहां गये महतारी,
हत्ती घोड़ा सजा पालकी भोंरा चकरी ल्याउं ।

घम्मर-घम्मर होय मथानी पुनिया दई बिलोनी,
चकिया की धुन लगती नोंनी मुनिया मांगै लोनी,
चकन गड़ेरी भावै 'वैजू' चकरी सो मन्नाऊं ।

—आकाशवाणी, जयपुर

भइया की को कीसें कइये

—गोपाल दास रूसिया

(१)

मनखां सदा राखियौ बस में, खुशी रओ हर रस में।
खींच लगाम दोऊ हाँतन सें, कसर न करियौ कस में।
ऊबड़-खाबड़ गलीगैल चल, दाग न दइयौ जस में।
कात 'गुपाल' छिपाव न उनसें, बो सबकी नस-नस में॥

(२)

तुमने अपनी उमर हजारी, रनबन की कर डारी।
कर डारी मैली चादर सब, कोयला जैसी कारी।
कारी मिटै ज्ञान साबुन सें, जब हुइयै उजियारी।
उजियारी आजै 'गुपाल' तब, भग जैहै अँधियारी॥

(३)

भइया की को कीसें कइये, कीके होकें रइये।
चोर-चोर मौसेरे बन गये, की खाँ खोरी दइये।
स्वारथ बस परमारथ भूले, की की बखरी जइये।
कात 'गुपाल' न्याय की खातिर, मूड़ परै सो सइये॥

(४)

बानी बोलौ बनावनी की, होय न तनातनी की।
तिल कौ ताड़ बना बेमतलब, करौ न ठनाठनी की।
जोस आय तौ होस राखियौ, करौ न हनाहनी की।
फूट 'गुपाल' लड़ाई करादे, घर में धना-धनी की॥

—हरिहर रोड, हरपालपुर (छतरपुर), म० प्र०

स्वागत

—देवकीनन्दन 'शान्त'

तुमै का दैं हमाये पास का है,
इतै रस्मैं निभावे की प्रथा है।

तुमाये चावे वारे ढेर से हैं,
इतै भी चलकैं आओ काफला है।

तुमैं चुप देख कैं डर सौ लगत है,
न जानै कौनै कर दओ टोटका है।

अबै होनें है चर्चा ई विषय पै,
दिलन में काय सें जो फासला है।

मिटावने है हमें जड़ सें बुराई,
करो जो आज हमने फैसला है।

इतै आकैं करो ऐसान तुमने,
तुमावौ 'शान्त' मन सें शुकरिया है।

—२४, हाइडिल कालोनी, विवेकानन्दपुरी, लखनऊ

ख्याल और स्वांग

—गिरजा प्रसाद कुम्हार

⊙

[बुन्देलखण्ड में अनेक लोककवि लोकगीतों की रचना कर रहे हैं। उनकी रचना-शैली के दो रूप हैं—(१) पारम्परिक लोकधुनों पर गीत-रचना और (२) नयी लोकधुनों पर गीत-रचना। पहली शैली की विशेषता है कि वह चित्रपटीय धुनों से प्रभावित नहीं होती। नयी लोकधुनों का भी स्वागत है, पर शर्त यह है कि उनमें लोक में रच-बस जाने की क्षमता हो। यह सही है कि नये समाज की रचना में लोकगीत एक उपयोगी माध्यम है, लेकिन उसमें दो अनिवार्यताएँ हैं—(१) नये समाज के उपयुक्त नये विषय की समाहिति (२) लोक द्वारा ग्रहण किये जाने की सक्षमता। बुंदेली गीत और बुंदेली लोकगीत में प्रमुख अन्तर यह है कि यदि बुंदेली गीत लोकप्रचलित हो जाता है, तो वह लोकगीत बन जाता है। यहाँ जो गीत दिये गये हैं, वे लोकशैलीबद्ध हैं और लोकगीत बनने की राह पर हैं।] —संपादक

ख्याल और स्वांग गीतों का गायन हमारे बुंदेलखण्ड क्षेत्र के पूर्वी, पश्चिमी एवं उत्तरी भूभाग में होता है जैसे—सागर सम्भाग में जिला दमोह के पथरिया, फतेहपुर एवं आस-पास के अन्य ग्रामों में। गीतों के गायन का समय रात्रिकाल है। अक्सर गीत वसन्त ऋतु में और त्योहारों एवं आनंदोत्सवों में गाये जाते हैं। लोक-चेतना गीतों का मूल विषय है। गीतों में लोक-जीवन का परिचय होता है। गीत मानव के बाह्य जीवन के साथ-ही-साथ आंतरिक मनोभावों में सरसता, मधुरता से ओतप्रोत करने में सक्षम हैं। हमारे बुंदेलखण्ड क्षेत्र के गीत सरल, संक्षिप्त, मधुर और संगीतमय हैं।

ख्याल और स्वांग गीतों में मैंने जो छन्द और उड़ान शब्द का प्रयोग किया है, वह मात्र रचना की सुंदरता के रूप में है। छन्द से तात्पर्य गीत का अंतरा है और उड़ान से तात्पर्य गीत की टेक की पुनरावृत्ति से है। ख्याल और स्वांग गीतों का गायन-वादन सामूहिक रूप से होता है और वे नृत्य के साथ प्रस्तुत किये जाते हैं। इन गीतों में पारम्परिकता के आधार पर रसिकता रहती है और क्षेत्र की लोकसंस्कृति की यथार्थता।

ख्याल

[१]

बागों में कूके कारी कोयलिया, सेजों पै बोले गोरी धना।
अराररा रा-प्यारे गोरी धना। टेक।

गोरी कह रई सैयाँ प्यारे, पाँवन पैजना छनानना ना। छन्द।
अराररा रा-प्यारे छनानना ना। उड़ान। [१]

राग-रंग में दो उर रंग गये, मना करत रई गोरी धना। छन्द।
अराररा रा-प्यारे गोरी धना। उड़ान। [२]

गिरजा प्यारी कला जब लागी, बोल उठीं सजना-सजना। छन्द।
अराररा रा-प्यारे ये सजना। उड़ान। [३]

(**टिप्पणी**—इस गीत में शृंगार रस प्रमुख है। फलस्वरूप गीत-गायन के प्रवाह में रसिक जन आनंदित होकर इसे बड़ी उमंग के साथ नाच-झूमकर वादन एवं गायन करते हैं। कभी-कभी तो इस प्रकार के गीत का प्रभाव नायक-नायिका अथवा पति-पत्नी के मन-मुटाव को दूरकर मन मिलाने की महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। ख्याल-गीत भूली-बिसरी याद दिलाकर पूर्व प्रेम की पुनरावृत्ति करने में श्रेष्ठ है।)

[२]

जीरा को प्यारे नैयाँ ठिकानों, कौन घरी का हो जानै।
राम धरै एक दिन जानै॥ टेक॥

प्रान-पखेरू हिय पिंजरा में, कंचन काया मोल जानै । छन्द ।
राम घरै एक दिन जानै ॥ उड़ान [१]

कंचन काया को गरब नै करियो, माटी में एक दिन मिल जानै । छन्द ।
राम घरै एक दिन जानै ॥ उड़ान [२]

हरि को भजन तुम कर लेव प्यारे, तर जेहो यह दिल जानै । छन्द ।
राम घरै एक दिन जानै ॥ उड़ान [३]

गिरजा कहें हरि मूल मंत्र है, धन्न भाग हैं जो जानै । छन्द ।
राम घरै एक दिन जानै । उड़ान [४]

(**टिप्पणी**—इस गीत में भी गायन-वादन तथा नृत्य भले ही पूर्व गीतानुसार है, परन्तु गीत का प्रमुख रस शान्त है । इस गीत में कामुक भाव को रोकने एवं ज्ञानमय शांत भाव जगाने की शक्ति छिपी है । इस ख्याल-गीत का गायक, श्रोता अपनी जीवन की सार्थकता का अनुभव कर हरि-भजन से जुड़ने की चेष्टा करता है । इस प्रकार के गीत-मानव के आंतरिक रूप से जुड़कर कायिक जीवन की नश्वरता का सहज अनुभव कराते हैं ।)

[३]

नैना कटीले गोरी के देखे, मोहित हो गये हैं सजना ॥
गोरी बजा रई है कंगना ॥ टेक ॥

लरम कलैयाँ गोरी बहियाँ, हाँतन पहिरें हैं कंगना । छन्द ।
गोरी बजा रई है कंगना ॥ उड़ान [१]

छिन भीतर-छिन जावें अँगना, देख रहे उनके सजना । छन्द ।
गोरी बजा रई है कंगना ॥ उड़ान [२]

करत इसारे गोरी के कंगना, बात करत दोऊ नयना । छन्द ।
गोरी बजा रई है कंगना ॥ उड़ान [३]

कुछ दिन बीते गिरजा देखे, जनम लये हैं सुघर ललना । छन्द ।
गोरी बजा रई है कंगना ॥ उड़ान [४]

(**टिप्पणी**—इस गीत में नारी के रूप, शृंगार और क्रिया-कलाप का वर्णन है । गीत जब अच्छी सुर-ताल के साथ गाया जाता है, तब रसिक जन आनन्दित होते हैं ।)

ख्याल

गीत—इस ख्याल गाने में ताल दादरा लय ड्योढ़ी एवं गायकी मध्यम तक होगी । इसके पहले कुछ धुन बजेगी अर्थात् गत बजेगी बाद में गाना शुरू होगा ।)

गत इस प्रकार है :—सा ऽऽ, रे सा, रे रे, सानि । इसे दो बार बजाकर फिर—
म स ग ऽ रे ऽऽ सानि़ स ऽऽ ।

दादरा ताल

```
            ×                         ×                         ×
ठेका के बोल—धा  धी  ना  धां  तू  ना  धा  धी  ना  धां  तू  ना  धा  धी  ना  धां  तू  ना
     बा ऽ गों ऽ  में ऽ  कूऽ  ऽके  ऽऽ  का ऽ  रीऽ  को ऽ  य  लि  ऽ  या  ऽ  ऽ  से  जों  ऽपे ऽ
     नि़स  रे ऽ  रे -  सा ऽ सा  नि़  नि़स  रे ऽ  रे -  स  स  स  स  नी  नी़  सा ऽ सा ऽ  नि़स
     बो ऽ ले  ऽ  गोरी  ऽ  ध  ना ऽ  ऽ  ऽ
     सा ऽ स  रे  रे रे  —  स  सानि़  नि़  स  ॥ छन्द ॥
                              अरा  ररा  रा  प्यारे  गो  री  धना ऽ  ऽ  ऽ
                              रेरे  रे रे  रेसा  .साऽनि  स  स  सा. सा  सा  ऽ  ॥ टेक ॥
तालो—गो ऽ री ऽ कह  रंई  सैं ऽ यों ऽ प्या ऽ रे  ऽ पा ऽ व  न  पैं ऽ ज  ना ऽ  छना  नना  ना ऽ  ऽऽ  ऽऽ
     स ऽ रे रे  सस  सानि़  नि़स  रे -  सा ऽ सा  नि़  सा.स,  स  सा-स  सा रे  रेरे  सरे  सनि़,  ऽनि,  सस  ॥छन्द॥१॥
     अरा  ररा  रा -  प्यारे  छ  ना  नना  ना  ऽ
     रे रे  रेरे  रे -  साऽनि  रे  रे  स रे  सनि़  नी़स  ॥ उड़ान ॥ १ ॥
```

राऽ ग रं ऽग में ऽ दोऽ ऊ ऽ रं ग गये मना ऽ क र त रंई
नि़स रे रे सस सा नि़ नि़स रे रे स स सानि़ नि़स स स स स सारे

गोरी ऽ ध ना — ऽऽ ।। छन्द ।। ।। २ ।।
रेऽरे — स नि़ — नि़स

अरा र रा रा — प्यारे गो री ध नाऽ ऽ ऽ ।। उड़ान ।। २ ।।
रेरे रे रे रे — साऽनि़ सा सा स साऽ सा ऽ

गिर जा ऽ प्याऽ री ऽ कला ज ब लाऽ गी ऽ बोऽ ल उ ठीं स ज
स रे रे म म ऽ म ग रेगऽ ग ग रेगरे सा सा साऽ स स सऽ सा रे

नाऽ म ज नाऽ ऽ ऽ ।। छन्द ।। ३ ।।
रे- स स नि़ऽ नि़ स

अरा ररा रा प्यारे ये ऽ स ज ना ऽ ऽ ऽ ।। उड़ान ।। ३ ।।
रेरे रेरे रेऽ साऽनि़ स ऽ स स स ऽ स नि़

विशेष—ऊपर लिखी गयी गत कहरवा या धुमारी में बजे। सारंगी (कामरी) वाद्य यंत्र में षड्ज स्वर से मध्यम तक की गत रहती है। इसके साथ तोड़ने वलय बदलने में आनन्द आता है। ख्याल गीत क्रमांक १ से ३ तक की गायकी, ताल, लय, मात्रा उपर्युक्त गीत के अनुसार रहेगी।

स्वांग

दिन ऊग आये रे राजा, भरी रई मन में ।।
दिन ऊग आये ।। टेक ।।

खान-पान नहिं सेज सुहावे, मन नहिं लगे रे दौलत-धन में । छन्द ।
दिन ऊग आये ।। उड़ान ।। १ ।।

मन की बात मनईं में रै गई, काम की आग लगी रई तन में । छन्द ।
दिन ऊग आये ।। उड़ान ।। २ ।।

गिरजा कह रये इन धनियाँ से । गोय रखोरी अपने मन में । छन्द ।
दिन ऊग आये ।। उड़ान ।। ३ ।।

(**टिप्पणी**—इस गीत में विरह वेदना का उल्लेख है। चूंकि कभी-कभी प्राकृतिक बाधाएं, सामाजिक, पारिवारिक तथा आपस के मन-मुटाव से नर-नारी का संयोग नहीं हो पाता है, जिससे विरह की कल्पना यथार्थ बन जाती है। कथन गीत अपनी शक्ति में विरहिणी के मन की व्यथा का चित्रण सहज रूप से करने में सक्षम है।)

स्वांग

गीत—इस स्वांग गीत में ताल कहरवा एवं मात्राएँ आठ हैं तथा स्वर-लिपि निम्नवत् है—

ठेका के बोल—धा धी न ति नं क धि न
ऽऽ, दिन ऊ ऽग आ ये रेराऽ जाऽ ऽ भऽ
नि़ सा रे सरे रे रे रे रेग रेरे रे रेस

री रई मऽ न में ऽ दि न ।। टेक ।।
सा सनि़ सारे रे रे सा नि़ सा

खाऽ नपा ऽन नहिं सेऽ जसु हाऽ वेऽ
नी- नी- नि़सा रे रे रेग गरे सानि़ सा- ।।छन्द।।१।।

मन नहिं लगे रेदौ लत धन में दिन
नि़सरे रे रे रे ग रे स नि़सा नि़सरे रे गरे सनि़सा ।।उड़ान।।१।।

मन की बाऽ तम नईं मेंऽ रै गई
(१) नि़नि़ नि़नि़ नि़सा रेरे रेग रेस सानि़ साऽ ।।छन्द।।२।।

(२) निसा रेसा

काऽ मकी आऽ गल गी रई तन मेंऽ दिन ॥उड़ान॥२॥
रे रेरे रेग रेरे रे सानि् निसारे रेस नि्स

गिर जाऽ कह रये इन धनि योंऽ सेंऽ ॥छन्द॥३॥
नी- नी- नि्स रेरे रेग रेसा सानि् सा-

गोऽ पर खोरी अप नेंऽ मन मेंऽ दिन ॥ उड़ान ॥४॥
निसा रेरे रेरे रेसा नी्नी नि्सरे रेसा नी्सा
ऊग आये
रेऽरे सासा

—आई० टी० आई०, बमोह

बुन्देला शासकों के अज्ञात अभिलेख

—नरेश कुमार पाठक

०

राज्य संग्रहालय धुबेला में बुन्देला शासकों के सात नवीन अभिलेखों का संग्रह है। इनमें एक सती लेख है। सभी लेख अभी तक अप्रकाशित ही हैं। ये लेख बुंदेलखण्ड की ओरछा, पन्ना एवं दतिया रियासतों से सम्बन्धित हैं। ये लेख ओरछा नरेश महाराजा वीरसिंह जू देव बुन्देला, महाराजा जुझार सिंह जू देव बुन्देला, महाराजा सामन्त सिंह जू देव बुन्देला, पन्ना नरेश बुंदेलखण्ड केशरी महाराजा छत्रसाल जू देव बुन्देला, दिवान महाराजा हिरदेशाह जू देव बुन्देला, दतिया नरेश महाराजा शत्रुजीत बहादुर जू देव बुन्देला के शासनकाल से सम्बन्धित हैं। ये लेख कुढ़ार (गढ़कुण्डार), ओरछा जिला टीकमगढ़, छतरपुर, बिजावर जिला छतरपुर से प्राप्त हुए हैं। अभिलेखों का विवरण निम्नलिखित है :—

'ओरछा नरेश महाराजा वीरसिंह जू देव का गढ़कुण्डार शिलालेख' वर्ष १६२४ ईस्वी

यह अभिलेख २५ मई १९७६ को तत्कालीन ओरछा के केयरटेकर ठाकुर कमल सिंह द्वारा ग्राम कुढ़ार के निकट गज के कुएँ में से निकाला गया था, बाद में इसे संग्रहालय में लाकर सुरक्षित किया गया। (स० क्र० १८५८)

यह चौकोर पाषाण खण्ड, लाल बलुआ पत्थर का है। शिलालेख का आकार ७५ × ४५ से० मी० है, जिसमें ५० × ४६ से० मी० के आकार में १६ पंक्तियों में लेख उत्कीर्ण है। अभिलेख की भाषा हिन्दी मिश्रित स्थानीय एवं लिपि १७वीं शती की देवनागरी है। अक्षरों का आकार ३ × २ से० मी० है।

अभिलेख की प्रथम व द्वितीय पंक्ति में भगवान् पुरुषोत्तम राम एवं मुरलीधर भगवान् कृष्ण की स्तुति की गयी है। द्वितीय से लेकर छठीं पंक्तियों में अभिलेख की तिथि महाराजा विक्रमादित्य द्वारा जारी किया गया, विक्रम संवत् १६८१ एवं शक संवत् १५४६ (ईस्वी सन् १६२४) माह अषाढ़ बदी तिथि ग्यारस दिन बुद्धवार दिया गया है।

प्रस्तुत अभिलेख की छठीं से नौवीं पंक्ति में मुगल बादशाह जहाँगीर (ईस्वी सन् १६०५ से १६२८) के पत्र आने का उल्लेख है। साथ ही ओरछा-नरेश महाराजाधिराज राजा वीरसिंह का उल्लेख है। ये विक्रम संवत् १६६३ से १६८४ तक (ईस्वी सन् १६०६ से १६२७) ओरछा के शासक थे और मुगल सम्राट् जहाँगीर के अभिन्न मित्र थे। कुड़ार[1] (गढ़कुण्डार) का क्षेत्र महाराजा वीरसिंह जू देव बुन्देला के अधीन ही था।

अभिलेख की नौवीं से पन्द्रहवीं पंक्ति तक महाराजा वीरसिंह जू देव के अधीन प्रशासनिक अधिकारियों के नाम हैं, जिनमें कुछ को प्रधान की उपाधि थी। प्रधान हरीहरदास के पुत्र धर्मकारी, प्रधान दुर्गादास, प्रधान प्रयागदास, श्यामदास, मनोहरदास, परीद ब्रनीदास का उल्लेख है। इनमें से दुर्गादास, प्रीरागदास (प्रागदास), श्यामदास (इन्हें घनश्याम भी कहते थे) ये सम्भवतः महाराजा वीरसिंह के चाचा थे, क्योंकि इनके नाम महाराजा रुद्रप्रताप के १२ पुत्रों में मिलते हैं।[2] बैनीदास वीरसिंह देव का पुत्र था। इसका नाम वीरसिंह देव के बारह पुत्रों में आता है।[3] सोलहवीं पंक्ति में पत्र को लाने वाले का नाम आसकरण आया है।

अभिलेख का वाचन इस प्रकार है—

१—॥ सिधि श्री श्री रामचंद्र श्री क्री
२—॥ स्न जी ॥ श्री नृपपति विक्र
३—॥ मादित्य राज्यातु तुगत संवतु
४—॥ १६८१ सांके साली वाहम
५—॥ १५४६ वरषे आषढ़ वदी
६—॥ ११ वधे तत्स मये श्री जहागिर
७—॥ पाती साहि राज्य श्री महा रा
८—॥ ज्य धीराज राजा श्री वीर सी
९—॥ ध देव का प्र [धा] न हरीहर दा
१०—॥ स के पुत्र धर्मकारी क वाव
११—॥ पायो प्रधान दुर्गादास ॥ प्र
१२—॥ धान प्रीरागदास जी मय
१३—॥ स्यामदास जये मनोहर दा
१४—॥ स परीदब्रनी दास वेनी दा
१५—॥ स य श्री श्री श्री श्री
१६—॥ पती वरी आस करन

'ओरछा नरेश महाराजा जुझार सिंह जू देव बुन्देला ओरछा से प्राप्त अभिलेखित साँचा'—वर्ष-१६२९ ईस्वी

यह अभिलेखित मुहर का साँचा (सं० क्र० १८५७) दिनांक १७ फरवरी, १९७६ को ओरछा, जिला टीकमगढ़ के जहाँगीर महल की सफाई करते समय प्राप्त हुआ था। मिट्टी एवं चूने मिश्रित है, बाद में इसे पकाया गया है। यह मुहर तैयार करने का साँचा है, जिसमें देवनागरी लिपि में उल्टे अक्षर बने हैं। जब मुहर तैयार की जाती होगी उस समय उस पर सीधे अक्षर तैयार होते हैं। साँचे का आकार १०×१२ से० मी० है। लेख की भाषा हिन्दी है। साँचे पर चार पंक्तियों में लेख उत्कीर्ण है। यह साँचा दो खण्डों में है। लेख पर उत्कीर्ण अक्षरों का आकार २×१ से० मी० है।

अभिलेख की प्रथम पंक्ति में तिथि विक्रम संवत् १६८६ (ईस्वी सन् १६२९) दी गयी है। द्वितीय से चौथी पंक्ति में ओरछानरेश महाराजा जुझार सिंह जू देव बुन्देला के राज्य का उल्लेख करते हुए हस्ताक्षर इति लिखा हुआ है, जिन्हें नृपति की उपाधि से सम्बोधित किया गया है। ओरछा-नरेश महाराजा जुझार सिंह का शासनकाल विक्रम संवत् १६८४ से १६९१ (ईस्वी सन् १६२७ से १६३४) तक रहा था और साँचे पर अंकित तिथि १६२९ है, जो कि महाराजा जुझार सिंह जू देव बुन्देला के शासनकाल की है।

महाराजा जुझार सिंह जू देव बुन्देला एक दुर्बल शासक थे, जिसके कारण राज्य को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। खानजहाँ लोदी ने मुगलों के विरुद्ध विद्रोह किया और १६२८ ईस्वी में वह बिना किसी बाधा के ओरछा राज्य की सीमा पार कर गया। इस कारण महाराजा जुझार सिंह जू देव बुन्देला को मुगलों के कोप का शिकार होना पड़ा, किन्तु शीघ्र ही वे अपनी पूर्व प्रतिष्ठा पाने में सफल हो गये। १६३० ईस्वी में खानजहाँ जब ओरछा के पास से गुजर रहा था, तभी जुझार सिंह ने उस पर आक्रमण

करके मुगल मैत्री पा ली और उन्हें मुगलों की सेवा में लेकर दक्षिण भेज दिया गया। उनकी अनुपस्थिति में उनके भाई हरदौल राज्य का संचालन करते थे।[४] विक्रम संवत् १६६१ (ईस्वी सन् १६३४) में मुगल बादशाह के सहयोग से गौड़ों द्वारा गोंड़वाना (मण्डला) में महाराजा जुझार सिंह जू देव की हत्या कर दी गयी[५] जहाँ पर आज भी महाराजा जुझार सिंह जू देव बुन्देला की छतरी बनी हुई है।

अभिलेख का वाचन इस प्रकार है :—

१—सवतु १६८६ व
२—श्री नृपति जुझ [ा]
३—र सिंध जू राज्ये मु ह
४—स ता सार इति

'महाराजा छत्रसाल जू देव बुन्देला का बिजावर ताम्रलेख'
वर्ष १७०२ ईस्वी

यह ताम्रपत्र मध्यप्रदेश के छतरपुर जिले की तहसील बिजावर[१] के उप-कोषालय से दिनांक ५ मई, १९८१ को संग्रहालय को प्राप्त हुआ था। (सं० क्र० २१२४) इस ताम्रपत्र का आकार २४×१६ से० मी० है। लेख की लिपि देवनागरी एवं भाषा बुन्देली मिश्रित हिन्दी है। ताम्रपत्र दोनों ओर लिखा है। अग्रभाग में नौ पंक्तियाँ हैं। इन पंक्तियों के दायीं ओर सात पंक्तियाँ हैं। इसके ऊपर गोल घेरे में चार पंक्तियों में सील खुदी है। पृष्ठ भाग में दो पंक्तियों में लेख उत्कीर्ण है। लेख के अक्षरों का आकार सामान्यतः १×१ से० मी० है।

अभिलेख के ऊपर ॥१ का अंक और उसके नीचे सही लिखा है। दायें ओर उनकी गोलाकार सील में चार पंक्तियों में 'जान है सो मान है ना मान है सो मान है।' लिखा है। यह वचन महाराजा छत्रसाल के गुरु महाप्रभु प्राणनाथ जी ने दिये थे, जिसे उन्होंने अपनी राजकीय सील (मुद्रा) पर खुदवाया था, जो उनके पत्र एवं ताम्रपत्रों आदि पर लिखी मिलती है। अभिलेख के प्रथम से तृतीय पंक्ति में बुन्देखण्ड-केशरी महाराजा छत्रसाल जू देव बुन्देला की सरकार का उल्लेख है, जिन्हें महाराजाधिरा ज श्री महाराजा श्री राजा की उपाधियों से सम्बोधित किया गया है। महाराजा छत्रसाल ने अपने पराक्रम से बुन्देलखण्ड में एक विशाल राज्य की स्थापना की थी। उनका कार्यकाल १६४९ से सन् १७३१ ईस्वी तक था। प्रारम्भ

में २१ वर्ष की अवस्था में उनके पास केवल ५ घुड़सवार और २५ पैदल सैनिक थे। लेकिन उनके अन्त समय तक बुन्देलखण्ड की एक लोकोक्ति के अनुसार :—

'इत जमुना उत नर्मदा इत चंबल उत टौंस।
छत्रसाल से लरन की रही न काहू हौंस॥'

इधर यमुना, उधर नर्मदा, इधर चंबल, उधर टौंस नदियाँ हैं और इस क्षेत्र में छत्रसाल से लड़ने का किसी को उत्साह नहीं रहा। यह लोकोक्ति उनके राज्य की वास्तविक सीमाओं की नहीं, बल्कि इस प्रदेश में उनके प्रभाव क्षेत्र की द्योतक है।[७] डॉ० भगवानदास गुप्त के अनुसार वे ओरछा के साधारण जागीरदार के पुत्र की साधारण स्थिति से ऊँचे उठकर एक स्वतन्त्र राज्य के संस्थापक बनने में समर्थ हो सके थे। उनका राज्य सम्पूर्ण पूर्वी बुन्देलखण्ड में फैला हुआ था और उनका विस्तार ओरछा, दतिया तथा चन्देरी के अन्य बुन्देला राज्यों से अधिक था।[८] डॉ० प्रताप सिंह मुखारया ने लिखा है कि इस राज्य की स्थापना में उन्हें लगभग आधी शताब्दी तक घोर संघर्ष करना पड़ा था। बिना साधनों के उस कठिन समय में इतने बड़े राज्य की स्थापना सचमुच प्रशंसनीय है, जिसकी तुलना महाराष्ट्र के शिवाजी से कर सकते हैं।[९]

अभिलेख की तृतीय से नौवीं पंक्तियों में महाराजा छत्रसाल के द्वारा पंडित श्री चौबे गंगाराम की उपाधि से सम्बोधित करते हुए मौजे धरोही[१०] में महुआ के २५ पेड़ सरकार के दान देने की सनद दी थी और यह हुकुम (आदेश) दिया कि अगर इसमें जो तकरार (झगड़ा) आदि करेगा उसे दण्डित किया जावेगा।

दायें ओर हाशिया में अंकित सात पंक्तियों में ताम्रलेख जारी करने की तिथि कार्तिक सुदी ४ संवत् १७५९ (ईस्वी सन् १७०२) दी गयी है एवं ताम्रपत्र जारी करने का मुकाम (स्थान) मऊ[११] का उल्लेख किया है।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि सन् १६७५ के लगभग महाराजा छत्रसाल ने पन्ना पर आक्रमण कर वहाँ के गोंड राजा को हराकर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था और पन्ना को अपनी राजधानी बनाया था, किन्तु उनकी सेना का जमाव मऊ में ही बना रहा। मऊ छतरपुर के पास नौगाँव रोड पर १६ किलोमीटर पर है। इसके पास ही उन्होंने महेबा गाँव बसाया था। छत्रसाल जीवन भर मऊ-महेबा से ही राज्य करते रहे। इसीलिए इस

ताम्रपत्र को १७०२ में महाराजा छत्रसाल ने मऊ से ही जारी किया था।[१२]

ताम्रलेख के पृष्ठ भाग में दो पंक्ति में किसी मौजे हाना होया का उल्लेख किया गया है, जिसका तात्पर्य स्पष्ट नहीं है।

अभिलेख का वाचन इस प्रकार है—

अग्रभाग

॥१

सही

जान है सो	१—॥ श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा
मान है ना मा	२—॥ श्री राजा छत्रसाल जू देव की स
न है सो जा	३—॥ रकार तैंस सनध करिदइी पं० श्री
न है	४—॥ चौबे गंगाराम पनमे सुरय आ
दो ही करा	५—॥ चार्ज को ऐते मौजे परोही मै हुक
तार कौ : :	६—॥ म पटिया २ दोहुअनु महुआ पेड़े
कातक	७—॥ २५ सरकार तैं पाअैं ज
सुदी ४ सं-	८—॥ इ कोऊ तकरार न करैअर (अगर)
वद १७५६	९—॥ तकरार करै सौ
मुकम म	**पृष्ठ भाग**
ऊ	१—॥ अरा कोऊ मौजा
	२—॥ हना होय

'महाराजा हिरदेशाह जू देव का छतरपुर शिलालेख'
वर्ष १७१५ ईस्वी

यह शिलालेख मध्य-प्रदेश के छतरपुर जिला के मुख्यालय के श्री सुरेन्द्र जैन ने इस संग्रहालय को सौंपा था। (सं० क्र० २६७) सफेद-लाल बलुआ पत्थर से निर्मित अभिलेख का आकार १९ × ४३ से० मी० है। इस अर्द्धवृत्ताकार पाषाण पर पांच पंक्तियों में लेख उत्कीर्ण है। लेख की लिपि देवनागरी, भाषा संस्कृत है। लेख के प्रारम्भ में भगवान् गणेश की स्तुति की गयी है। अभिलेख की प्रथम व द्वितीय पंक्ति में अषाढ़ सुदि अष्टमी सोमवार विक्रम संवत् १७७२ (ईस्वी सन् १७१५) शक संवत् १६३७ दी गयी है। दूसरी व तीसरी पंक्ति में बुन्देलखण्डकेशरी महाराजा छत्रसाल जू देव बुन्देला और उनके पुत्र दीवान हिरदेशाह जू देव बुन्देला को पत्र भेजने का उल्लेख है,

जिसमें छत्रसाल को महिप व राजा की उपाधि एवं उनके पुत्र हिरदेशाह को दिमान की उपाधि से सम्बोधित किया गया है।

बुन्देलखण्डकेशरी महाराजा छत्रसाल का शासनकाल सन् १६४६ से १७३१ ईस्वी तक रहा। उन्होंने अपने पराक्रम से बुन्देलखण्ड में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। तारीख ए मुहम्मदी के अनुसार महाराजा छत्रसाल की मृत्यु शनिवार ४ दिसम्बर, १७३१ के दिन मऊ में हुई जहाँकि उनकी दो समाधियाँ अभी भी विद्यमान हैं। छत्रसाल की वसीयत के अनुसार उनकी मृत्यु के उपरान्त राज्य के तीन भाग हुए। राज्य का प्रमुख भाग जो पन्ना कहलाया, बड़े पुत्र[१३] हिरदेशाह (हृदयशाह) को दिया गया।[१४]

महाराजा हिरदेशाह दिसम्बर, १७३१ में पन्ना की गद्दी पर बैठे। छत्रसाल के सभी पुत्रों में हिरदेशाह सबसे योग्य था। स्वतंत्र पन्ना राज्य में बहु संस्थापक शासक था। उनका शासनकाल अपेक्षाकृत शान्त रहा। १७२६ में बघेलखण्ड पर आक्रमण कर उसने समस्त बघेल राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया था, किन्तु छत्रसाल के आग्रह पर मैहर, जसो और वीरसिंहपुर के इलाके को छोड़कर शेष राज्य पुनः रीवा के अल्पवयस्क शासक अवधूत सिंह को लौटा दिया। पेशवा के साथ उसके संबंध अत्यन्त आत्मीयता के थे जैसा कि बाजीराव पेशवा के पत्रों से स्पष्ट होता है। मुगलों के साथ भी उसने अच्छे संबंध बना रखे थे। सन् १७३७ में निजाम मराठों को मालवा से निकाल-बाहर करने के लिये दिल्ली से बुन्देलखण्ड होते हुए भोपाल की ओर जा रहा था, तो ११ नवम्बर, १७३७ में उसने धामोनी के निकट निजाम से भेंटकर अपनी निष्ठा से उसे आश्वस्त किया था। हिरदेशाह की फरवरी, १७३९ (माघ सुदी संवत् १७९५) में मृत्यु हो गयी।[१५]

प्रस्तुत अभिलेख की चौथी व पाँचवीं पंक्ति में हिरदेशाह के सेवक प्रजापति कुवांसिह और कारीगर मवांसिह का उल्लेख है। अन्त में सभी को प्रणाम लिखा गया है।

अभिलेख का वाचन इस प्रकार है —

१—श्री गणेश जू संवत १७७२ साके १६३७ अषाढ सुदि
२—८ सोमे श्री पातिसाहि कर कर महिप्रा राजा छ
३—त्र साल जू राज्य ताके सुत श्री दिवान हिरदसाहि जू ति
४—न के सेवक प्र: जूपति राइ कुवा सिंध कारीगर भवां सिंहो
५—लेवी हल सुनमस्तु

'महाराजा सामन्तसिह जू देव बुन्देला का ओरछा शिलालेख'

यह शिलालेख २५ मई, सन् १९७६ को ओरछा[११] से प्राप्त हुआ था। चौकोर पाषाण पट्टिका सफेद बलुआ पत्थर की है। (सं० क्र० १८६०) शिलापट्ट का आकार ४८×४०×५ से० मी० है। इस पर १६ पंक्तियों में लेख उत्कीर्ण है। अभिलेख की भाषा संस्कृत मिश्रित स्थानीय व लिपि १८ वीं शती की देवनागरी है। अक्षर अपेक्षाकृत छोटे एवं बड़े दोनों प्रकार के हैं। उनका आकार सामान्यतः २×१ से० मी० है। अभिलेख की अधिकांश पंक्तियों के अक्षर पाषाण से निकल जाने के कारण स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती है। इसमें केवल ओरछा के तीन शासकों का उल्लेख अवश्य स्पष्ट किया गया है।

अभिलेख की प्रथम पंक्ति में गणेश जी की स्तुति की गयी है। द्वितीय एवं तृतीय पंक्ति में ओरछा के शासकों की वंशावली दी गयी है, जो निम्न प्रकार है—

१—उद्योत सिह (१६८४ से १७३६ ईस्वी)
२—पृथ्वी सिह (१७३६ से १७५२ ईस्वी)
३—सामन्त सिह (१७५२ से १७६५ ईस्वी)

उक्त तीनों शासकों ने ओरछा में ईस्वी सन् १६८४ से १७६५ तक (८२ वर्ष) शासन किया। इन शासकों की संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है—

सन् १६८४ में ओरछा के महाराज जसवन्त सिह की मृत्यु के पश्चात् रानी अमर कुमारी ने श्री दीवान हरदौल के नाती (पोते) बड़ोनी ऐरछ के जागीरदार उद्योत सिह को गोद लेकर ओरछा के सिहासन पर बिठाया।

महाराजा उद्योत सिह मुगल सम्राट् बहादुर शाह के समकालीन थे।[१७] इसके दो पुत्र देवी सिह और रणधीर सिह इनके समय में ही मृत्यु को प्राप्त हुए थे। अर्थात् १७३६ ईस्वी में ५२ वर्ष शासन करने के बाद महोबा (उ० प्र०) में महाराजा उद्योत सिह की मृत्यु हो गयी।[१८]

महाराजा उद्योत सिह की मृत्यु के पश्चात् ईस्वी सन् १७३६ में उद्योत सिह का पोता (नाती) पृथ्वीसिह ओरछा के राजा हुए। पृथ्वीसिह के एक-मात्र पुत्र अमर सिह की शेर का शिकार करते समय सन् १७५२ में मृत्यु हो गयी। इसी वर्ष महाराजा पृथ्वीसिह की भी मृत्यु हो गयी।

महाराजा पृथ्वीसिह की मृत्यु के पश्चात् इनके पोता (नाती) सामन्त सिह (ईस्वी सन् १७५२) राजा हुए[१९] और महाराजा सामन्त सिह की सन् १७६५ ईस्वी में मृत्यु हो गयी।

यह शिलालेख किसी स्थान पर बीजक के रूप में लगाया गया होगा। इसकी तिथि सन् १७५२ से १७६५ ईस्वी के मध्य हो सकती है। क्योंकि महाराजा सामन्त सिह ने उक्त वर्षों के मध्य ही शासन किया था।[२०]

अभिलेख का वाचन इस प्रकार है—

१—[श्री ग] णेशाय नमः। बीजकु······[ग] जा धर जू के कृत श्लोक
२—॥ उद्योत सिहात्समधिवी [पृ] थवं सिहात्समकात्
३—॥ मानं ॥ सामंत सिहा नृपतिः स्तुमेने गुरूपममं त्रिसुकुं
४—॥ हिस······धास्त व्यहमीश्यत्तन मियक कायस्थ
५—॥ को ··· करूणा मयो गुणानिधिः श्री भानुलोक
६—॥ धीः ॥······वाम साहिर भवत्त सान्मरणा······ा······
७—॥ भानूराव सु······ग सीतपार व्यागंत······पार्धि······
८—॥ निर्मिता तेन नापीय मधोपम पयोध.........
९—॥ ये भूया ज्जननी वसुगो...॥ १३ ॥ क कु......स......
१०—॥ रे वासु भाना बुद गये नग...के शैशिरे मगमेत
११—॥ गसिति सप्तम्पां बुधे दस्त्र···कल्प श्रुमय···णा जी···
१२—॥ पि...त्स गितात्र ॥४॥............राज........................
१३—॥ राज..
१४—॥ ....
१५—............................. ....ण
१६—.......................................॥ श्रीः ॥ श्रीः ॥

'महाराजा शत्रुजीत बहादुर जू देव बुन्देला का गढ़कुण्डार शिलालेख' सन् १७९० ईस्वी

यह शिलालेख मध्यप्रदेश के टीकमगढ़ जिले की निवाड़ी तहसील में ग्राम कुढ़ार (गढ़कुण्डार) से प्राप्त हुआ था। (स० क्र० १८५९) सफेद बलुआ पत्थर पर निर्मित अभिलेख का आकार ५६×४० से० मी० है।

इसमें १० × १० से० मी० आकार में ६ पंक्तियों में लेख उत्कीर्ण है। लेख के चारों ओर रेखा (लाइन) खिंची हुई है। लेख की लिपि देवनागरी, भाषा हिन्दी है। अभिलेख की प्रथम पंक्ति में कस्बा कुण्डार का उल्लेख है, जो कुण्डार कस्बा टीकमगढ़ जिले की निवाड़ी तहसील में स्थित है। इसी स्थान से यह अभिलेख प्राप्त हुआ है। प्रथम से तृतीय पंक्ति में दतियानरेश महाराजा शत्रुजीत बहादुर जू देव का उल्लेख है, जिन्हें श्री महाराजाधिराज श्री महाराजाश्री राव राजा की उपाधियों से सम्बोधित किया गया है। ठाकुर लक्ष्मण सिंह गौर ने दतियानरेश शत्रुजीत बहादुर जू देव बुन्देला के विषय में लिखा है कि इनका राज्यकाल विक्रम संवत् १८१६ से १८५८ (ईस्वी सन् १७६२ से १८०१) तक रहा। इन्होंने ओरछानरेश विक्रमाजीत कुँवर दूल्हा को गद्दी पर प्रतिष्ठित करने में दो बार सहयोग पहुँचाया, जिसके उपलक्ष्य में शत्रुजीत महाराज को १७ गाँव प्राप्त हुए।[२१] इस अभिलेख से ऐसा स्पष्ट होता है कि महाराजा शत्रुजीत के इन १७ गाँवों में कुण्डार कस्बा का भूभाग आता होगा। सन् १८०० ईस्वी में शत्रुजीत ने महादजी सिंधिया की विधवा बाइयों को सेंवढा[२२] में आश्रय प्रदान किया। उनका पक्ष लेकर लकवा दादा ने जब सेंवढा प्राचीन नाम किन्नरगढ़ के किले के सामने भारी तैयारी के साथ ग्वालियर के रघुनाथ राव और फ्रान्सीसी सेनानायक पीरू (PERRON) के विरुद्ध अदम्य वीरता दिखायी, कैप्टेन साइम्स के नेतृत्व में बायें पार्श्व का तो दतिया के वयोवृद्ध वीर नरेश ने बुरी तरह परास्त किया। राजा अपने छत्र के कारण सहज पहचाने जा सकते थे, जिसके कारण उन्हें एक घातक घाव लगा, परन्तु उन्होंने पीरू को भी घायल कर दिया। पीरू की असाधारण वीरता के कारण सिंधिया की भयंकर हार होते-होते बच गयी। राज्य में प्राप्त 'शत्रुजीत रासो' का यह दावा है कि पीरू मारा गया,[२३] ठाकुर लक्ष्मण सिंह गौर ने लिखा है; कि यह तथ्य भ्रमात्मक है, क्योंकि उसकी सन् १८०३ में सेवानिवृत्त होकर फ्रान्स में मृत्यु हुई थी।[२४]

३ मई, १८०१ को सेंवढा में राजा शत्रुजीत और ग्वालियर के राजा सिंधिया के मध्य अन्तिम युद्ध हुआ। इस संबंध में कैप्टन लार्ड लिखता है, कि सिंधिया के सेनाध्यक्ष पैरन पेंड्रो की फौजों को सेंवढा के राजा ने पराजित किया जिसमें सिंधिया के डेढ़ हजार सिपाई खेत आये[२५], इसी वर्ष महाराजा शत्रुजीत बहादुर जू देव बुन्देला की मृत्यु हो गयी।

'महाराजा सामन्त सिंह जू देव बुन्देला का छारद्वारी ओरछा अभिलेख'
वर्ष-१७५६ ईस्वी

यह अभिलेख ओरछा के छारद्वारी मंदिर से जुलाई, १९७० को प्राप्त हुआ था, जो वर्तमान में जहाँगीर महल पुरातत्व संग्रहालय के संग्रह में सुरक्षित है। (स० क्र० १०) अभिलेख बलुआ पत्थर की शिला पर ४० × २८ × ४ से० मी० आकार का है। यह अभिलेख १८ पंक्तियों में उत्कीर्ण है। अभिलेख की लिपि देवनागरी भाषा संस्कृत मिश्रित बुन्देली हिन्दी है। अभिलेख के प्रारम्भ में गणेश जी की स्तुति की गयी है। अभिलेख की तिथि विक्रम संवत् १८१३ (ईस्वी सन् १७५६, शक संवत् १५८२) उत्तरायण सूर्य शिशिर ऋतु माह महीना शुक्ल पक्ष पंचमी सोमवार दी गयी है। इसी दिन महाराजा सामन्त सिंह जू देव बुन्देला (वि० स० १८०९-१८२२, ईस्वी सन् १७५२-१७६५) द्वारा शिव प्रतिमा की स्थापना की गयी थी, शिल्पी का नाम छोटे दिया गया है। इसमें महाकवि केशवदास, ओरछा नगर जिसमें महाराजा सामन्त सिंह ने सामन्तपुरी बनवायी थी, का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त भगवान् शिव के सदाशिव रूप एवं पार्वती के पति शिव का भी है। अभिलेख का वाचन पंक्तिबद्ध इस प्रकार है—

१—श्री गणेशाय नमः ।। श्री गणधिपतिये नमः ।। मुल्ताने
२—ऽ श्रुभ देश उत्तम यति श्री केशवो लूच्छु चिर्यें ना कारि
३—तपस्वि नाहठतयः श्री केशवा श्री तये ।। तन्मार्गे प्रथिते विकुंठ ज
४—निते मोहन्पुरी नाम भूस्त छिण्यो हरिवंश नाम महितो भातो गुरो
५—स्व पदे ।। १ ।। संवछिकम भूपते गुंणा मही नागें दुसंख्य सिते माघे हीद्रति
६—थौ सुधा सुदिवसे हिर्वुद्दय भेंगेस्थिरे प्रसादे तिमनो हरे गिरि सुदेंश्व नंदी
७—गणोः श्रभ्राभैः सह मोहनेश्वर इतिख्यातो हर ख्यातो हर स्थापतिः ।।२।। ओऽछे सा
८—वथ सिंह नरिद्रं सुवेतवै तीर पुनीत महारच्यो सावथपुरी जू शिवालय
९—लीनी समाधि गुक्तनै जहाँ मोहनई सुर धापै महाविधि सों गुरू के हित जा

१०—न तहाँ दीस तपापन सैं तिनके सुमनोरथ पूरन पजै यहाँ ।।३।। ओऽ

११—छे सामथ सिह के राजु सामंथ पुरी गुनुभक्तिकरी है । सत जोजन जाई

१२—गुनू हित पाइ सदाशिव मूरति सुभ्रपरी है । लै करि थापी गुरु के समी

१३—प सुदा विधाननि सोधि धरी है, चिरजीव सदा सुप भोग करै निजु वंस वि

१४—पै जिन ओप धरी है ।।४।। मोहन ईश्वर देव क चरन सरोज पवित्र गोस्वामी

१५—सामथपुरी धरे वाकू वपू चित्त ।।५।। नंदी गणा समा युक्तो गणाधिप सम

१६—चितौ शिष्य प्रशिष्य संपनौ पातुतौ पार्बतीश्वरः ।।६।। संवत् १८१३

१७—साके १५७८ व्यपनाम संवत्सरे उत्तराने सितिरेर्त्तो माघे मासे सुक्ले

१८—पक्षे पंचम्यां चंद्रवासरे शिव स्थापितः चरन सेवक शिल्पी छोटे श्रुभ मस्तू ।।

प्रस्तुत अभिलेख की तीन से सातवीं पंक्तियों से ज्ञात होता है कि दतिया-नरेश महाराजा शत्रुजीत वहादुर जू देव का कुण्डार कस्वे में आगमन के समय उन्होंने पुराने किले कुआँ व वाग आदि का अवलोकन किया और उन्होंने कथावाचक पंडित रामनाथ की देख-रेख में पुराने कुआँ व वाग का जीर्णोद्धार करवाया और कस्वा (गाँव) एवं पुरा (गाँव का भाग या मुहल्ला) की सुविधा हेतु वाग लगवाया गया । अभिलेख की सातवीं पंक्ति के अन्त में अभिलेख की तिथि ज्येष्ठ सुदी १०, संवत् १८४७ (ईस्वी सन् १७९०) दी गयी है, जो कि महाराजा शत्रुजीत के शासनकाल की है । अन्तिम पंक्ति का तात्पर्य अस्पष्ट है :—

अभिलेख का वाचन इस प्रकार है :—

१—कस्वा कुडार श्री महाराजाधिराज श्री

२—महाराजा श्री राव राजा सत्रजीत वहादु

३—र जू देव कौ आइवौ भयो तहां पुराने निकु

४—कुवाह वाग के नजर भरो तापर किले मज

५—कूरं कथा [f]वहारी श्री पंडित रांमनाथ को

६—कम भयोकै (भरोसे) 4 [र] कुवाहा वाग को जीर्णोधा

७—रह क [र] तापर मुस्तिक हुकम के क [स] वा पुरा पौत

८—रागो वाग लगायो जैठ सुदि १० संवत १८४७

९— ·········सयगस हीगा श्री

संदर्भ सूची

१—कुडार ग्राम (गढ़ कुण्डार) मध्य प्रदेश के टीकमगढ़ जिले की निवाड़ी तहसील में स्थित है। यह स्थान विक्रम संवत् १३०८ से विक्रम संवत् १५८८ (ईस्वी सन १२५१ से १५३१) तक दस बुन्देला शासकों ने ओरछा से पूर्व शासन किया । दसवें शासक रुद्रप्रताप ने गढ़ कुण्डार से ओरछा राजधानी बनाई ।

द्रष्टव्य—ठाकुर लक्ष्मण सिंह गौर **'ओरछा का इतिहास'** ओरछा १९८१, पृष्ठ ३४ ।

२—ठाकुर लक्ष्मण सिंह गौर, पूर्वोक्त पृष्ठ १८२ ।

३—महाराजा वीर सिंह देव के एक दरवारी कवि ने भी वीर सिंह देव के वारह पुत्रों का होना वताया है :—

जालिम जुझार सिंह, प्रवल पहाड सिंह,
चन्द्रभान, माधव, हठीले हरदौल है ।
भीम से भुजान वाले, भूप भगवान सिंह,
नरहरिदास वेनीदास से न और है ।
समर के शूरवीर, परमानन्द, किशुन सिंह,
तुलसीराम, वाघराज, ऐते मति दौर है ।
वारह वखाने बेटा वीर सिंह भूपति के,
दान-किरपान-हिन्दुवान सिरमौर है ।

द्रष्टव्य—रामचरण हरयाण मित्र **'बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य'** दिल्ली १९६९, पृष्ठ ४४ ।

४—इन्द्रमोहन गोयल द्वारा सम्पादित **'सरोकार'** पुरा युवा अंक भोपाल जुलाई १९८३ (अंक ५ .वर्ष ३) पृष्ठ ७ ।

५—ठाकुर लक्ष्मण सिंह गौर, पूर्वोक्त पृष्ठ ८८ (नवां संस्करण, ओरछा १९८२) ।

६—विजावर छतरपुर जिला मुख्यालय से ४० किलो मीटर की दूरी पर है। यह बुन्देला शासकों की छोटी-सी रियासत ईस्वी सन् १७६६ से १६४७ तक रही।

७—डॉ० प्रताप सिंह मुखारया "महाराजा छत्रसाल के वसीयत-संबंधी दो हुक्म और उनका महत्त्व" **'जनरल ऑफ दि मध्य प्रदेश इतिहास परिषद्'** नम्बर ११ भोपाल १६८०, पृष्ठ ४८।

८—डॉ० भगवानदास गुप्त **'महाराजा छत्रसाल बुन्देला'** आगरा १६५८, पृष्ठ ३६।

६—डॉ० प्रताप सिंह मुखारया पूर्वोक्त पृष्ठ ४८।

१०—धरोही ग्राम आज कल का (वर्तमान) धमोरा ग्राम हो सकता है, जो नौगाँव-छतरपुर मार्ग पर स्थित है।

११—मऊ वर्तमान मऊ-सहानिया है, जो छतरपुर जिले की नौगाँव तहसील में स्थित है।

१२—डॉ० प्रताप सिंह मुखारया पूर्वोक्त पृष्ठ ४६।

१३—आयु की दृष्टि से हिरदेशाह अपने भाइयों में सबसे बड़े नहीं थे। स्वयं जगतराज हिरदेशाह से २-३ माह बड़े थे, चूँकि हिरदेशाह की माँ पँवार राजकुमारी देव कुँवर छत्रसाल की प्रथम पत्नी एवं पटरानी थीं अतएव उनका उत्तराधिकारी के मामले में छोटा होने पर भी ज्येष्ठ माना गया, यह बात छत्रसाल ने जगतराज को लिखे अपने पत्र में स्पष्ट कर दी थी।

१४—डॉ० महेश चौबे 'छतरपुर राज्य के निर्माण की पृष्ठभूमि : एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण' **'शताब्दी स्मारिका महाराजा महाविद्यालय छतरपुर'** वर्ष १६८५-८६, पृष्ठ ४।

१५—डॉ० महेश चौबे पूर्वोक्त पृष्ठ ४।

१६—ओरछा मध्य प्रदेश के टीकमगढ़ जिले में बेतवा नदी के किनारे एक पवित्र तीर्थस्थल है।

१७—महाराजा उद्योत सिंह को मुगल बादशाह की ओर से सन् १७०६ में पहाड़सिंह पुरा जिसे औरंगाबाद कहते हैं, पर अधिकार करने का फरमान प्राप्त हुआ और सन् १७३४ में १३ महल मिलने की भी सनद मिली थी।

१८—महाराजा उद्योत सिंह को हिन्दी साहित्य से बहुत प्रेम था, इनके दरबार में एक सौ कवि सम्मानपूर्वक रहा करते थे।

१६—महाराजा सामन्तसिंह ने सामन्त-नगर बसाया। यह बड़ा गाँव वालों की शाखा में से थे।

२०—ठाकुर लक्ष्मण सिंह, पूर्वोक्त ओरछा १६७७, पृष्ठ १२२ से १२५।

२१—ठाकुर लक्ष्मण सिंह गौर, पूर्वोक्त ओरछा १६८२, पृष्ठ १७३।

२२—सेवढ़ा मध्य प्रदेश के दतिया जिले की सेवढ़ा तहसील का मुख्यालय है।

२३—जनश्रुति है, कि शत्रुजीत महाराज ने पीरू को मारा था। इसका प्रमाण इस पंक्ति में मिलता है 'पीरू मारो खेत में छत्रजीत महराजा'। द्रष्टव्य—रामचरण हरयाण मित्र, पूर्वोक्त पृष्ठ १६०।

२४—ठाकुर लक्ष्मण सिंह गौर, पूर्वोक्त पृष्ठ १७४।

२५—रामचरण हरयाण मित्र, पूर्वोक्त पृष्ठ १६०।

—पुरातत्व संग्रहालय, जगदलपुर

बुन्देलखण्ड में खंगारों का राज्य : सम्पादक के नाम खुला विरोध-पत्र

१

श्री सम्पादक जी,

मामुलिया अंक सात में 'बुन्देलखण्ड में खंगारों का राज्य' शीर्षक बुन्देला जी का शोधलेख महान् आपत्तिजनक है। उसमें दिये गये प्रसंग अन्य इतिहास-ग्रन्थों से मिलान करने पर सही साबित नहीं होते हैं और वे प्रसंग, जिनसे बुन्देली सत्ता की छवि धूमिल होती है, छोड़ दिये गये हैं। विपक्षी खंगारों को अछूत, चोर, मुसलमानों के मेली जितने ऐब हो सके हैं, लगाये गये हैं। खंगारों के विषय में सही बात कहने को अभी तक किसी ने कलम उठायी ही नहीं है। विद्वान् लेखक डॉ० श्यामसुन्दर निगम साहब का कथन सत्य है कि—"बुन्देलखण्ड को ही ले लीजिये चन्देलों के पतन और बुन्देलों के अभ्युदय के मध्य की कहानी अभी तक अनकही है, इस दृष्टि से यह संक्रमण-काल बुन्देलखण्ड के इतिहास का अन्धकार-युग माना जा सकता है। आधुनिक काल में कई बड़े-बड़े इतिहास-ग्रन्थ लिखे गये किन्तु खंगारों के बारे में उन्होंने मौन ही रखा है। बुन्देलखण्ड पर बुन्देलों का काफी लम्बे समय तक आधिपत्य रहा। अतः सारे इतिहास लेखक की प्रक्रिया उनके इस आधिपत्य के प्रभाव व संरक्षण में रही। इस कारण खंगारों के इतिहास एवं उनकी पृष्ठभूमि के साथ न्याय नहीं हो पाता। विशेषतः इस सन्दर्भ में कि प्रारम्भ में बुन्देले खंगारों के शत्रु तथा कालान्तर में विजयी जाति की अभिमान-भावना से ओत-प्रोत रहे।"

उत्पत्ति का इतिहास

श्री वी० एल० ठाकुर एवं भाँटों की पोथियाँ खंगारों को परिहार क्षत्रियों की शाखा मानती हैं। अधिकतर खंगार जन अपने-आपको परिहार घोषित करते हैं। डॉ० निगम खंगार क्षत्रियों के प्रामाणिक इतिहास में लिखते हैं कि "खंगारों को प्राचीनकाल की आयुधजीवी क्षत्रियों की संतति मानना ही उचित प्रतीत होता है। आयुधजीवियों में विभिन्न आयुधों के नाम पर

भी अपनी जाति या संघ के नाम रखने की परम्परा रही है। धनुष-बाण का प्रयोग करने वाले ज्यावाणेय तथा फरसे का प्रयोग करने वाले परशु कहलाते रहे। अतः कोई कारण नहीं कि खंग का प्रयोग करने वाले खंगार न कहलायें। खंगार का शाब्दिक अर्थ होता है—खंग + आर। खंग = तलवार आर = ग्रहण करना या धारण करना—यानी तलवार धारण करने वाला वीर योद्धा।

मुरली मनोहर राय चिरगाँव, झाँसी का कथन है कि खंगार एक संघ का नाम है जिसमें सभी क्षत्रिय जातियों के लड़ाकू व्यक्ति और वीर ब्राह्मण व्यक्तियों को दीक्षित किया गया है।

विन्ध्याचल क्षेत्र में आने के कारण विन्धेला बना जो कालान्तर में बुन्देला हो गया। छत्रप्रकाश [पृष्ठ ६—८] के अनुसार पंचम विन्ध्यवासिनी देवी की शरण में गया और वहाँ उसने देवी पर अपने रक्त की बूंदें अर्पित कीं, इस कारण उसे बुन्देला कहा गया।

हादी कतुल अकालीम ग्रन्थ [पृष्ठ १६७] में वर्णन आता है कि हरदेव नामक गहरवार का एक बाँदी से विवाह हुआ था, अतः बाँदी की सन्तान बुन्देला कहलायी। इलियट ने इसकी पुष्टि की है। स्मिथ का कथन है कि बुन्देले खंगार कन्या और गहरवार राजपूत की सन्तान हैं। डॉ० निगम का कहना है कि खंगार और गहरवार मिश्रण से बुन्देलों की उत्पत्ति की चर्चा अन्य स्रोतों से भी ज्ञात होती है।

राज्यप्राप्ति

डॉ० वृन्दावनलाल वर्मा के अनुसार महोबा के राजा परमाल देव के पृथ्वीराज चौहान द्वारा हराये जाने के बाद से चन्देले छिन्न-भिन्न हो गये। पृथ्वीराज ने अपने सामन्त खेतसिंह खंगार को कुण्डार का शासक नियुक्त किया था। सन् ११८२ से ११९२ तक खेतसिंह खंगार शासक की हैसियत से कार्य करता है। ११९२ में पृथ्वीराज चौहन जब तराइन के मैदान में गोरी द्वारा पराजित होते हैं और भाई खीचीसिंह शहीद हो जाते हैं तथा जयचन्द की कायरता के परिणामस्वरूप देश पर यवनों का आधिपत्य होने लगता है, तब खेतसिंह खंगार कुण्डार राज्य स्वतन्त्र घोषित कर देते हैं।

इतिहास गढा कोटा में श्री भगवानदास उपनाम रज्जीलाल दुबे ने पञ्चम सिंह बुन्देला को खंगारों का आश्रय स्वीकार करना बताया है। डॉ० वृन्दा-

बनलाल वर्मा भी यही बात कहते हैं कि अन्तिम खंगार राजा हुरमत सिंह था। उसकी अधीनता में कुछ बुन्देले सरदार भी थे। सोहनपाल के भाई महोनी के अधिकारी ऐसे ही सरदारों में थे। बुन्देलखण्ड का स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने वाले बुन्देला का नाम सोहनपाल बताया जाता है। बँटवारे में सोहनपाल के भाई वीरपाल ने उन्हें हिस्से में कम ग्राम दिये थे, जिससे वह नाराज होकर कुण्डार चले आये। सोहनपाल महोनी से निकल गये और उन्होंने गढ़ कुण्डार में खंगार ठाकुर के यहाँ नौकरी कर ली। महाराजा छत्रपाल सम्पूर्णानन्द काशी के अनुसार सोहनपाल के सात वर्ष उत्तमता से नौकरी करने पर १२ गाँव की ब्योना जागीर का पट्टा दिया गया।

खंगार क्षत्रियों की वंशावली

ग्रन्थों से यह सिद्ध होता है कि गहरवार क्षत्रियों को बुन्देला नाम देने वाले पुरुष हेमकरण या पञ्चमसिंह ही थे, जिन्होंने खंगार राज्य में शरण प्राप्त की थी और पुनः उनके वंशधर सोहनपाल बुन्देला ने शरण ली। किस तरह छल-कपट द्वारा आश्रयदाता खंगार राजाओं का राज्य छुड़ाने में बुन्देले सफल हुए है और फिर उस इतिहास को गायब करके तोड़-मरोड़ कर प्रलोभन देकर लिखवाया गया, इसका एक उदाहरण देखिये—"जब ग्रन्थ की पूर्ती होगी तब बहुत सो ख्याल करो जैहै, अबै बरोबरी की बैठक बक्शी जात है।" (छत्र प्रकाश)

मामुलिया, पृष्ठ २२ पर लिखा है कि परमाल चन्देल ने सिया परिमार को गढ़ कुंडार का गवर्नर नियुक्त किया था। खूबसिंह नाम का एक खंगार सिया के अधीन एक सेना-नायक था। सन् ११८२ में पृथ्वीराज ने परमाल के राज्य पर चढ़ाई की थी। उरई तथा बैरागढ़ के युद्ध हुए थे। परमाल पराजित हुए थे। इसी युद्ध में गढ़कुण्डार का गवर्नर सिया परमार (पँवार) मारा गया था। श्री गोरेलाल तिवारी के ग्रन्थ 'बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास' में खूबसिंह खंगार को सिया पँवार के अधीन सेनानायक बताया गया है। उनका कहना है कि सिया के मारे जाने पर खूबसिंह स्वतंत्र हो गया। बुन्देला जी ने भी वही बात दोहराई है कि चन्देलों तथा चौहानों की बिगड़ी दशा का लाभ उठाकर खूबसिंह ने अपना शासन दृढ़ कर लिया। वे खूबसिंह या खेत खंगार बतला कर गोल बात कर जाते हैं।

अगर खूबसिंह खंगार सिया पँवार की सेना का सेना-नायक होता, तो आल्हाखण्ड में उसका कहीं वर्णन अवश्य होना चाहिये था। धनुआ तेली,

लाल तमोली, भन्ना गूजर आदि साधारण व्यक्तियों का वर्णन जब आल्हाखण्ड में किया गया है, तब एक लड़ाकू जाति और सेनापति पद पर नियुक्त व्यक्ति का वर्णन क्यों नहीं आया है? सेनापति वही व्यक्ति बनाया जाता था, जिसके साथ उसी जाति के असंख्य लोग मरने-मारने योग्य होते थे। सम्पूर्ण आल्हा-खण्ड में खंगार नाम का कोई वर्णन नहीं है जो सिद्ध करता है कि चन्देली सेना में खंगार जाति के व्यक्ति सम्मिलित नहीं थे। आल्हाखण्ड का लेखक 'जगनक' सिया पँवार का भाई था जिसका खूबसिंह खंगार सेनानायक से पूर्ण परिचित होना जरूरी है।

दूसरी तरफ हम देखते हैं कि पृथ्वीराज चौहान की सेना में खंगार वीरों की भरमार रही है। संयोगिता-हरण से चन्देलों के अन्त तक क्या, गोरी के अन्तिम आक्रमण तक पृथ्वीराज रासो में अनेक बार अनेक खंगार वीरों का वर्णन आया है—

संजेसंग बुधवराव खंगार,
सजोविडराज सुखेत खंगार,
खण्ड खण्ड निर्वाण सामन्त सार
खीची सुगोड खेता खंगार
खित्त रन जीतियो।

खीचीसिंह, खेमकरण आदि खंगार वीरों की रासो मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करता है। खंगारों के बल पर ही पृथ्वीराज चौहान ने सत्तरह बार मोहम्मद गोरी को भारत से खदेड़ने में सफलता प्राप्त की थी। महोबा विजय (११८२) के बाद चौहान ने खेतसिंह खंगार को यहाँ का सूबेदार नियुक्त किया था जो ११९२ के बाद स्वतंत्र राजा हुआ।

खंगार क्षत्रियों का इतिहास बताता है कि खूबसिंह खंगार महाराजा खेतसिंह का प्रपौत्र (पन्ती) था जो परम्परागत अपने पिता राजा छत्रसाल खंगार के बाद कुंडार की गद्दी पर बैठा। इस लड़ाई के समय उसका जन्म ही नहीं हुआ होगा। खेतसिंह जब संयोगिता-हरण में चौहान के साथ में थे, तो उन्हें भी सिया पँवार का साथ सम्भव नहीं है।

यह सब मात्र अटकलबाजी है। राजभक्त तिवारी जी और फिर बुन्देला जी ने खंगार इतिहास भुलौनी में डालने के प्रयास मात्र किये हैं, ऐसा ज्ञात होता है।

यवन और खंगार

मामुलिया के अंक ७, पृष्ठ २३ पर लिखा गया है—"किसी इतिहास से इस बात का पता तो नहीं लगता कि सन् ११९३ ई० के चन्दावर के युद्ध में उसने जयचन्द के विरुद्ध शहाबुद्दीन का साथ दिया था। परन्तु उसकी नीति तथा कुण्डार और चन्दावर के थोड़े से ही अन्तर के, तथा सन् १२०३ ई० में कुतबुद्दीन द्वारा परमाल की पराजय होने पर भी उसका अधिकार कुण्डार पर कायम रहने और फिर पीछे अलाउद्दीन आदि के समयों में उसके वंशज बने रहने से उसको चन्दावर (११९३ ई०) तथा कालिंजर (१२०३ ई०) के युद्ध में मुसलमानों के साथ में होना असम्भव नहीं प्रतीत होता है। यदि खंगारों ने विशेष अवसरों पर दिल्ली का पक्षपात नहीं दिखलाया होता, तो वे उनके निरन्तर आक्रमणों से बचे भी न रहते। इस काल में क्षत्रियों का शैथिल्य भी यही प्रकट करता है।" बुन्देला जी के पास कोई प्रमाण नहीं है कि खंगारों ने गोरी का साथ दिया था। अन्दाजा मात्र है कि वह इतने लम्बे अर्से तक स्वतंत्र सत्ता बिना मुसलमानों के पक्षपात के नहीं रख सकते थे। फिर उन्होंने पड़ोसी जयचन्द का साथ नहीं दिया।

खंगार मुसलमानों के कट्टर विरोधी रहे हैं। उनके संस्कार ही उस वातावरण में पैदा हुए थे, जिन्हें बदलना दुष्कर था। सच्चे देशभक्त चौहान का सही अनुगामी था खेतसिंह खंगार। भारत के अन्तिम सम्राट् पृथ्वीराज चौहान का जो प्रधान सामन्त रहा हो और जिसका सारा जीवन मुसलमानों से टक्कर लेने में ही व्यतीत हुआ हो, वह मुसलमानों की दासता स्वीकार कर ले, असम्भव बात है। वह जानता था कि विभीषण न होता तो रावण की, सुग्रीव न होता तो बालि की और जयचन्द न होता तो पृथ्वीराज चौहान की पराजय होना असम्भव था। एक जयचन्द की गद्दारी के कारण ही भारत माँ को सदियों तक दासता भोगनी पड़ी।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० निगम का मत है कि गोरी के आक्रमण के समय जयचन्द पृथ्वीराज के अन्त की प्रतीक्षा कर रहा था। कुछ इतिहासकारों का मत है कि स्वयं जयचन्द ने पृथ्वीराज के विरुद्ध गोरी को आमंत्रित किया था। चौहान का सामन्त अब भले ही वह राजा हो, उस जयचन्द के अन्त की प्रतीक्षा कर रहा हो, जिसने भारत माँ के चरणों में बेड़ियाँ डलवा दीं, तो इसमें उसे हिन्दू विरोधी नहीं कह सकते हैं।

कुण्डार का दुर्ग ४-५ पहाड़ों के बीच में स्थित पहाड़ी पर बना है जो मीलों दूर से दिखाई देता है। जैसे-जैसे आगे बढ़ते जाते हैं, छिपता जाता है और

एकदम आँखों से ओझल हो जाता है। कहते हैं कि हमलावर किसी भी जगह पहाड़ी पर तोप फिट क्यों न करें, निशाना चूक जाता है। गोला किले के ऊपर से निकल जाता है या नीचे पहाड़ी पर जा गिरता है। इसके विपरीत किले से चारों तरफ भी मारतोर है, इस कारण भी मुसलमानों ने कुण्डार पर आँख उठाने की कोशिश नहीं की। फिर यह दिल्ली से काफी दूर पड़ता है। नदियों और पहाड़ों का इलाका है, तुरन्त स्वतंत्र हो जाता है। क्षेत्र में असंख्य खंगार जनों की आबादी भरी पड़ी थी। अन्य क्षत्रिय जातियाँ परिहार, सेंगर, चन्देल राज्य की अनन्य भक्ति भाव से सेवक रही हैं।

खंगारों ने कभी किसी हिन्दू राज्य पर आक्रमण नहीं किया है। न मुसलमानों का पक्ष लेकर किसी हिन्दू राजा पर चढ़ाई की, न उनका साथ दिया। यवन सत्ता की अधीनता स्वीकार करने का एक भी पुष्ट प्रमाण नहीं है।

सोहनपाल की विजय

पृष्ठ २४ में दिया गया है कि "महोनी के बुन्देला राजा वीरपाल के भाई सोहनपाल ने उन्हें परास्त कर कुण्डार पर कब्जा कर लिया था।" इसमें यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि खंगारों को परास्त किस तरह किया था। एकपक्षीय बात बढ़ा-चढ़ाकर कही गयी है और हीन प्रसंगों को छोड़ दिया गया है। बुन्देली ग्रन्थों का ही कथन है कि (महाराजा छत्रसाल) "सोहनपाल की दो भतीजियाँ थीं, जो वह खंगारों को देना चाहता था। अवसरवश वाग्दान तो दे दिया, पर अपने मित्रों की सहायता से खंगारों को मारकर गढ़ कुण्डार के स्वामी हो गये।" खंगार राजकुमार नागदेव की शादी सोहनपाल बुन्देला की दुहिता रूपा के साथ तय होती है। टीका पर एक भोज दिया जाता है उसमें (नार्थ वेस्ट फ्राण्टियर गजेटियर) "भोजन में जालसाजी से विष मिला दिया गया था।" नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ३, सम्वत् १९७९ में लिखा है कि "विष मिला भोजन खिलाकर सबको मार डाला।"

क्षत्रिय वंश प्रदीप भाग २ में दिया है कि "कुछ दवा मिली हुई शराब उनको पिलाई और खूब नशे में करके बड़ी निर्दयता के साथ मय जन बच्चों के उनको कतल कर डाला।"

खंगार वंशावली कहती है कि सोहनपाल बुन्देला से लड़ाई हुई और १० कोस तक वह लोग भगा दिये गये। अमानसिंह और छतरसिंह बुन्देला मारे

गये। टेहरी का खंगार राजा मारा गया। उसकी रानी सती हो गयी। उपरान्त मुसलमान बादशाह की सेना ने गढ़ कुण्डार पर १३०५ ई० में चढ़ाई की और १३१३ में खंगारों ने किला खाली किया।

खंगारों की बात की पुष्टि आधुनिक ग्रन्थ नहीं करते है। खंगारों की बात में काफी वजन है। बुन्देली सत्ता में लिखे गये इतिहासों में उनकी पुष्टि कहाँ मिल सकती है। फिर भी कुछ संकेत मिलते है। 'गढ़ कुण्डार' उपन्यास में लिखा है कि ''खंगार लोग और बात कहते हैं। उपन्यास सम्बन्धी प्रसंग के बारे में उनका कहना है कि बुन्देलों ने पहले लड़की देने का प्रस्ताव किया, फिर कपट करके शराब पिलाकर और इस तरह अचेत करके जन बच्चों समेत मार गिराया।'' वे लोग यह भी कहते हैं कि ''बुन्देले मुसलमानों को जुझोति में ले आये थे।''

खंगार वंशावली में वर्णन आता है कि बुन्देले दिल्ली के बादशाह के पास गये और कहा राजा मानसिंह खंगार की लड़की बहुत सुन्दर है, उसको आप ब्याहें क्योंकि वह आपके लायक है। बादशाह ने सम्वत् १३०५ में चढ़ाई की और १३१३ में खंगारों ने किला खाली किया।

जुझोति प्रदेश की प्रथम राजधानी गढ़ कुण्डार में पंडित रामरतन पाठक लिखते हैं—''जो यज्ञ कुण्ड मेरे आँगन में है, उसमें गढ़ कुण्डार के खंगार राज्य वंश की राजकुमारी केशर दे ने जौहर किया था। इस क्षत्राणी ने हिन्दुत्व और सतीत्व की रक्षा के लिये अग्नि की शरण ली। उसने मुसलमान बादशाह की बेगम बनना स्वीकार नहीं किया।

पृष्ठ २४ पर अंकित है—''देवगण के करनाली की सिद्ध गुफा में एक लेख इस प्रकार है—'राजा वीर ने कुण्डार को सम्वत् १३४५ (सन् १२८२ ई०) में विजय किया था।' बुन्देलों के इतिहास तथा वंशावली के अनुसार सन् १२८२ ई० में वीरसिंह ने बुन्देलखण्ड में आकर विजय की थी तथा जगम्मनपुर के निकट सतार खाँ को परास्त किया था। अन्य लेखों से यह भी जान पड़ता है कि वह इन्हीं युद्धों में मारे गये थे। निदान इस समय तक खंगारों की सत्ता के विरुद्ध कोई घटना का पता नहीं लगता है अर्थात् सन् ११८२ ई० अथवा १२०३ से १२८८ ई० तक वे निर्बाधित शासन करते रहे थे। सन् १२८८ ई० में वीरसिंह ने उन्हें परास्त करके कुण्डार छीन लिया था, जैसा कि कर्नाली के लेख से स्पष्ट है। परन्तु वीरसिंह

ने खंगारों का आम कतल नहीं किया था, वरन् उनका उचित प्रबन्ध कर दिया था। वीरसिंह कुण्डार पर अधिक समय तक कब्जा नहीं रख सके थे।''

विजय-स्तम्भ या कीर्ति-गाथा चौराहों पर या सार्वजनिक खुलेआम लगाये जाने के प्रमाण राजपूती इतिहासों में अनेक देखने को मिलते हैं, गुफाओं में शिलालेख वाली यह अजीब बात है।

सम्वत् १३१३ में सोहनपाल बुन्देला द्वारा या मुसलमान बादशाह द्वारा खंगारों का अन्त होना ज्ञात है, फिर सम्वत् १३४५ में राजा वीर के लिये खंगार राज्य कहाँ मिला था। राजा वीर हेमकरण (पंचमसिंह का) पुत्र था। ओरछा के इतिहास में उसका शासनकाल सम्वत् ११२८ से ११४८ तक ही अंकित है, १३४५ नहीं है। फिर इसी लेख में अंकित है सन् १२८८ में वीरसिंह ने इन्हें परास्त कर राज्य छीन लिया था। फिर आगे पैराग्राफ में लिखते हैं—'१२८६ ई० में वीरसिंह ने खंगारों से राज्य छीना था।' यह दोहरी बात कैसी?

अन्य लेखों से यह भी जान पड़ता है कि वह इन्हीं युद्धों में मारे गये थे। खंगारों से कुण्डार राज्य छीनना कैसे सम्भव है? डॉ० निगम का कथन है कि—''वीर की यह सफलताएँ अतिशयोक्तिपूर्ण कथन ही हैं, क्योंकि अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार कालपी उस समय निश्चित ही मुसलमानों के अधिकार में था। कालिंजर पर उस समय निश्चित ही चन्देलों का अधिकार था आदि।''

विधर्मियों का पक्ष

पृष्ठ २५-२६ में लिखा है—''सोहनपाल की नाराजगी के और भी कारण पहले से उपस्थित थे। खंगार हिन्दू-स्वामियों के विरुद्ध होकर विधर्मियों का पक्ष करते रहते थे। सन् १२८६ ई० में वीरसिंह ने खंगारों से राज्य छीना था और उसका समुचित प्रवन्ध कर दिया था, तो भी उन्होंने अपने हिन्दू शासन का विरोध कर मुसलमानों को चढ़ाया था। साथ ही, युद्ध होने पर सोहनपाल के पूर्वज वीरसिंह मारे भी गये थे। ऐसी दशा में शासक जातियों का चिरस्थायी विरोध मानना अस्वाभाविक नहीं है।''

वास्तव में खंगार छत्रिय सच्चे स्वामिभक्त और देशभक्त रहे हैं। सर्वप्रथम हम भूपतसिंह खंगार को देखते हैं कि वह सल्पदेव भदोरिया का सेनापति है। दिल्ली के दास सुल्तान आरामशाह के आक्रमण के समय भदोरिया-

शक्ति समूल नष्ट हो जाती है। राजा की गर्भवती पत्नी मात्र बच रहती है। सुल्तान उसको भी हड़पना चाहता है। उस समय भूपतसिंह खंगार अपनी जान पर खेल कर उसकी रक्षा कर सुरक्षित स्थान सिकरी पहुँचाता है। कालान्तर में उसके रजू रावत नामक पुत्र का जन्म होता है। भूपतसिंह मुगलों पर आक्रमण कर पुनः भदोरिया राज्य स्थापित कर रजू रावत को राज्यासीन कराता है। राजा रजू रावत भूपतसिंह खंगार को मर्दुमी (मिरधा) की उपाधि से विभूषित करते हैं। भदोरिया रानी ने भूपतसिंह को भाई और राजा रजू ने मामा मानकर काफी सम्मान दिया। भदोरिया राज्य वंश खंगारों के साथ आज भी मामा का रिश्ता मानते आ रहे हैं और भदोरियों की शादी-विवाह में खंगार मामा से मेंहर में ५ हाथ हल्दी के लगवा कर भोजन कराकर भात परोसने की रस्म पूरी करते हैं। बाद में निज मामा यह रस्म करता है। खंगारों में मिरधा शब्द लिखने का तभी से चलन चला है।

ओरछा के राजा जुझारसिंह बुन्देला का विश्वस्त साथी और सेवक दलपतसिंह खंगार था, जिसको यह बरदाश्त नहीं था कि बुन्देलखण्ड का हिन्दू राजा मुगलों की दासता में तल्लीन रहकर अपनी जन्मभूमि की सेवा से वंचित रहे और मुगलों की जी-हुजूरी करता रहे। ओरछा के इतिहास में वर्णन आता है--"जुझारसिंह के आगरा आवास की अवधि में एक अज्ञात खंगार ने जुझार की अच्छी सेवा की। जुझार को उसने प्रसन्न कर रखा था। वह चाहता था कि जुझारसिंह शीघ्र ओरछा पहुँच जायें।"

लेखक ने आलोचनापूर्वक विपरीत इतिहास सृजन किया है। राजा वीर की सफलताओं का कोई अन्य इतिहास जिक्र नहीं करते हैं। बुन्देला जी स्वयं लिखते हैं—"सन् १३४५ में कुण्डार विजय होना बुन्देलों के किसी इतिहास में लिखा नहीं मिलता है।"

शूद्र और अलाउद्दीन

पृष्ठ २७ पर दिया है --"भरों के पीछे-पीछे शूद्र जाति के खंगारों ने ओरछा के आसपास अधिकार कर लिया था। दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन (सन् १२९६-१३१६) ने नैतिक कारणों से एक समय कुण्डार के खंगारों का संरक्षण किया था। मऊ महोनी के सोहनपाल बुन्देला (१२३१-३९) ई० के ममय में गढ़ कुण्डार में खंगार राजा थे।"

हम सिद्ध कर चुके हैं कि चन्देलों के पतन के बाद ११८२ से ११९२ तक खंगार सूबेदार के रूप में कार्य करते रहे। ११९२ के बाद वह पूर्ण स्वतंत्र होकर सत्तासीन हुए हैं।

अलाउद्दीन खिलजी जैसा जल्लाद बादशाह हिन्दू खंगारों की मदद करता, एक हास्यप्रद बात है। अगर खिलजी सुल्तान ने ही खंगारों की मदद की थी, तो कुण्डार राज्य मुसलमानों के अधीन होना चाहिये। अलाउद्दीन की सत्ता लेखक के अनुसार १३१६ तक रही है और इसी समय में १३१३ में बुन्देलों ने खंगारों से कुण्डार छीना है, तो फिर यह मुसलमानों की सीधी हार बुन्देलों से होना चाहिये। फिर उसका असर दिल्ली सल्तनत पर क्यों नहीं हुआ? यवन कुण्डार की सहायतार्थ क्यों नहीं आये? मुट्ठी भर बुन्देले सो भी खंगारों के जागीरदार अकेले कुण्डार राज्य में २२ हजार घुड़सवार और असंख्य पैदल सेना थी। घटना इसके विपरीत ही रही है। मुसलमानों और बुन्देलों ने मिलकर खंगारों का नाश किया है। इसी कारण दिल्ली पर कोई प्रक्रिया नहीं हो सकी।

खंगार शूद्र थे या क्षत्रिय? निम्न ऐतिहासिक प्रमाण देखने योग्य हैं। चन्देरी के इतिहास वर्णन में लिखा है—"कोई दो हजार वर्ष पहले यहाँ परिहार क्षत्रियों का राज्य था। इसके बाद नागवंशियों, चन्देले राजपूत और खंगार राजपूतों के राजे हुए।" त्याग-भूमि पत्रिका १९८५ काशी में अंकित है—"सोहनपाल महोनी से निकल गये और उन्होंने गढ़ कुण्डार में खंगार ठाकुर के यहाँ नौकरी कर ली।" महाराज छत्रपाल (सम्पूर्णानन्द काशी) में लिखा है कि—"इतिहास देखने से हमें सन्तोष हुआ कि खंगार क्षत्रिय लोग वास्तव में क्षत्रिय हैं।" कर्नल टाड का मत है कि "खंगारों को राजपूत होने के कई प्रमाण हैं, जो निश्चयात्मक हैं।"

ओरछा के इतिहास में ठाकुर भगवानसिंह ने खंगारों को परिहार वंश की शाखा माना है—"बुन्देलखण्ड के खंगार अपने को राजपूत कहते हैं और वास्तव में वे राजपूत ही माने जाते हैं। उन्हें ठाकुरों की एक उपजाति समझना चाहिये।" (अदालत जनाब जे० जन्सटन, कलेक्टर, झांसी)

डॉ० निगम का मत है—"खंगारों को शूद्र या आदिवासी या निम्न मानने वाले महानुभाव अपनी मान्यता की पुष्टि के लिये कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं करते तथा केवल यहाँ-वहाँ से सुनी हुई कुछ बातों या बुन्देल चारणों पर

विश्वास कर लेते हैं। यह प्रयत्न महान् आपत्तिजनक है। खंगारों के बारे में स्पष्ट रूप से यह कहना कि वे क्षत्रिय थे, कतई भ्रान्तिपूर्ण नहीं होगा। निम्न प्रमाणों के आधार पर खंगारों को क्षत्रिय कहना ही उचित प्रतीत होता है—

(१) किसी भी प्रमाणित इतिहासकार एवं गजेटियर ने खंगारों को क्षत्रिय मानने से इन्कार नहीं किया है या तो वे मौन रहे हैं या उन्होंने स्पष्ट शब्दों में खंगारों की उच्चवर्णता सम्भावित की है।

(२) एक भी मूल प्रमाण खंगारों के अक्षत्रियत्व सिद्ध करने हेतु प्राप्त नहीं है। इसके विपरीत सारी खंगार परम्पराएँ अपने-आपको क्षत्रिय घोषित करती हैं। चौहान, चन्देल, भदौरिया, परिहार आदि की परम्पराएँ उनके क्षत्रियत्व के विरुद्ध कुछ नहीं कहती। केवल बुन्देली परम्पराएँ उन्हें निम्न मानती हैं, किन्तु ऐसा शत्रुतावश होना सम्भव है।

(३) खंगार शब्द खड्ग से जुड़ा होने से क्षत्रियत्व का सूचक है।

(४) यदि खंगार शूद्र, अछूत या पिछड़े हुए होते, तो राजपूत जातियाँ अपनी संतानों का नाम खंगार या खेंगार नहीं रखतीं। चूडासमा जाड़ेजा सिसोदिया, कछवाह, भाटी आदि राजपूतों में यह नाम पर्याप्त लोकप्रिय था और शौर्य तथा क्षत्रियत्व का द्योतक था।

(५) हर्ष से लगाकर सम्पूर्ण मध्यकाल तक भारत में जाति-पाँति-प्रथा अत्यन्त ही जटिल एवं सघन रही है। यदि खंगार शूद्र हुए होते, तो, न तो पृथ्वीराज चौहान खेता खंगार को अपना सामन्त बनाता और न ही उसे जेजाकभुक्ति का प्रशासन सौंपता।

(६) समकालीन अनेक राजपूत शक्तियों ने खेतसिंह खंगार एवं उसके वंश से निकट के सम्बन्ध रखे। कुण्डार के खंगार राज्य के अधीन चन्देल, चौहान आदि राजपूत सामंत थे। भाँटों की कई पोथियाँ हमें बताती हैं कि खंगार नृपतियों की रानियाँ उच्च राजपूत कुलों की थीं।

(७) बुन्देल ख्यालों में खंगारों को निम्न माना है। यदि ऐसी ही स्थिति होती तो हुरमतसिंह खंगार द्वारा अपने पुत्र नागदेव के लिए सोहनपाल बुन्देला की दुहिता को माँगने का प्रस्ताव सोहनपाल तत्काल अस्वीकार कर देता। उसकी स्वीकृति इस बात को दर्शाती है कि उस समय खंगारों के राजपूतों से

वैवाहिक सम्बन्ध थे। सोहनपाल द्वारा अपनी पुत्री का नागदेव से विवाह करने की हिचकिचाहट स्पष्ट राजनैतिक कारणों से थी। दूसरे, इसलिए भी कि उसकी पुत्री रूपा पुण्यपाल परमार की वाग्दत्ता बन चुकी थी। विवाह हेतु संकोच का एक कारण यह भी हो सकता था कि नागदेव बहुविवाह से ग्रस्त था।"

इन समस्त प्रमाणों के आधार पर खंगारों को क्षत्रिय मानना ही उचित, विवेकपूर्ण एवं युक्तियुक्त होगा। खंगार लोग विदेशी भी नहीं ठहराये जाते, न वे ब्राह्मण या वैश्य माने जाते हैं। शूद्र वे सिद्ध नहीं होते, अतः उन्हें क्षत्रियों के अतिरिक्त अन्य किसी वर्ग में रखा नहीं जा सकता।

विवाह सम्बन्ध

पृष्ठ २७ में है कि "सोहनपाल ने विक्रमी संवत् १३१३ या १३१४ सन् १२५७ ई० में हमला करके खंगारों को परास्त किया और उनके राज्य पर अधिकार कर लिया था। ऐसे जातीय कार्य में सहायक न होने से बुन्देलों तथा अन्य क्षत्रियों में मनमुटाव हो गया था। अस्तु, इसी समय से अन्य राजपूतों से सम्बन्ध-प्रथा शिथिल-सी होकर प्रायः बुन्देला, पँवार और धन्धेरों में ही विवाह सम्बन्ध होने लगे थे।"

बुन्देला जी ने बात को घुमाने की पूरी कोशिश की है। बुन्देलखण्ड केसरी में वर्णन आया है कि—"बन्धु-बान्धव बिगड़ पड़े और कहा कि इन दोनों लड़कियों को जो खंगार को वाग्दत्ता थीं, तुमने ब्याहा है और धोखा देकर खंगारों का नाश किया है, इसलिए तुम जातिवर्ग से च्युत किये जाते हो। तब से बुन्देले पँवार, धन्धेरों से राजपूतों का खानपान, विवाह सम्बन्ध नहीं है।"

पृष्ठ ३१ पर लेखक ने लिखा है—"मरहठा समय में खंगार प्रख्यात चोर थे और उनकी बहुत-सी कहावतें हैं—'खंगार का बल खनता में है', 'सुनार और खंगार साथ रह सकते हैं क्योंकि खंगार का चोरी का माल सुनार लेता है।"

खंगारों को चोरी-डकैती और राहजनी के इल्जाम मरहठा समय से नहीं, उनकी सत्ता-समाप्ति के बाद से क्या सत्ता-समय से ही लगाये गये हैं। उनकी जागरूकता को तस्करी का नाम दिया गया है, क्योंकि वह पूर्व में मुसलमानों से लड़ते-भिड़ते रहे और उन्हें आतंकित करते रहे। कभी अधीनता स्वीकार

नहीं की, सदैव बगावत का झण्डा खड़ा करते रहे और बाद में बुन्देलों से यही कारण है कि मुसलमानों, बुन्देलों और उनके रिश्तेदारों व मित्रों ने खंगारों को बागी, चोर और तस्करी के इल्जाम लगाये हैं।

१८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम को अंग्रेजों और भारत के विभीषणों ने गदर से नाम से सम्बोधित किया है। रानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, नाना साहब आदि देशभक्तों को बागी बताया गया है। क्या यह सच है? स्वतन्त्र भारत में आज उनके बलिदानों की कीमत आँकी जा सकती है। कुछ ऐसा भी हुआ है कि बुन्देली राज्य और जागीरों के सम्पर्क में आकर कभी-कभी खंगारों से अकेले और कभी सम्मिलित होकर चोरी-डकैती स्वयं राजा व जागीरदार करते-कराते रहे हैं। चोरी-डकैती का सारा माल जागीरदार साहब के घर जाता रहा। थोड़ा-बहुत खंगारों को दे देते होंगे। जब कभी पकड़ हुई तो स्वामिभक्ति में बेचारे खंगार लोग इल्जाम कबूल कर सजा भोगते रहे हैं। यदि खंगार चोर होते और उनकी चोरी का माल सुनार लेते, तो आज खंगार गरीबी की रेखा पार न किये रहते, लखपति-करोड़पति होते। जेलों में भी इक्का-दुक्का कहीं खंगार मिलता है। अधिकतर वे ही लोग पाये जाते हैं जो बड़े आदमी, जागीरदार, नम्बरदार कहलाते रहे हैं।

पृष्ठ ३१ पर यह भी लिखा है—"केवल एक गर्भवती स्त्री बची थी। वह कुसुम के बगीचे में छिप रही थी। एक सांडल ब्राह्मण ने यह वादा कराके कि 'पुत्र हो, तो वह बुन्देलों की जूती-बरदारी का काम करे' उस स्त्री की जान बचायी थी। उसके पुत्र हुआ और वह तथा उसके वंशधर बुन्देला राजाओं के सेवक हुए। तभी से वे 'राज खंगार' कहलाते थे।"

कई राजभक्त लेखक भी इस बात को कहते हैं और बुन्देला जी का भी यही कथन है कि सम्पूर्ण खंगार कतल हो चुके थे। केवल एक स्त्री ही बची थी। उसी के लड़के की सन्तान मौजूदा खंगार है। प्रश्न उठता है कि वह लड़का ब्याहा कहाँ गया होगा। सम्वत् १३१३ से आज तक बमुश्किल एक व्यक्ति की सन्तान एक हजार-डेढ़ हजार हो जाते, जब कि देश के खंगारों की जनसंख्या लाखों होगी। राजघराने का सर्वनाश कर दिया होगा, सम्पूर्ण खंगार जाति का नहीं।

बुन्देलों की सेवा करने से सेवक खंगार कहलाना चाहिये था, राज खंगार नहीं। सही बात नहीं बतलाना चाहते हैं कि देश के राजा होने के नाते वह राजा खंगार कहलाते थे। उनका राज्य जूनागढ़, गढ़कुण्डार, टेहरी, नरवर,

चन्देरी, कालिञ्जर, कालपी आदि ऐतिहासिक स्थानों पर रहा है। राजा खंगार ही बिगड़ी दशा में 'राज खंगार' हो गया है। बुन्देलों की बिगड़ी दशा में खंगारों ने उन्हें राजाश्रय दिया। सेना में नौकर रखा, फिर जागीरें बख्शीं। खंगार वंशावली तो यहाँ तक कहती है कि राजा ने बुन्देलों की लड़की रतन कुँवरबाई से धर्म-विवाह किया और एक गाँव दहेज में लगाया। काफी सम्मान देकर मदद की, कोई धोखाधड़ी का व्यवहार नहीं किया। दूसरी तरफ बुन्देलों के ग्रन्थ लेख आदि एकदम नृशंस व्यवहार की बात करते हैं।

खंगारों के जनक राणा खंगार के विषय में शत्रु सिद्धराज सोलंकी की माँ कहती है कि—

> धन्य तेरा वैरी वह सोरठ का राणा ही,
> जूझ गया लेने प्रतिशोध जो पितामह का।

सिद्धराज स्वंय कहता है कि—

> ओ खंगार, ओ खंगार पिछड़ा यहाँ भी मैं,
> क्या खंगार अरनोराज और नरवर्मा क्या,
> सब में यही एक आन-बान अपनी,
> सब-कुछ जाय मगर जाने न देंगे आन।
> निश्चय बखानने के योग्य यह मान है।

—राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

खंगारों की रगों में उन वीर पुरुषों का रक्त प्रवाहित होता रहा है जो जननी जन्मभूमि की रक्षार्थ हँसते-हँसते आत्म-समर्पण करते रहे हैं। खंगार शब्द ही अपने-आप में क्षत्रियत्व को सँजो कर रखे है।

श्री सम्पादक जी खंगारों का वास्तविक इतिहास विजेता बुन्देलों ने खोज-खोज कर नष्ट कर दिया है और नया इतिहास निर्माण कराकर खंगारों की देशभक्ति पर कीचड़ उछालकर तरह-तरह से कलंकित किया गया है। गहरवार बुन्देलों के यह भी प्रमाण मिलते हैं कि श्रेष्ठ स्थानों पर से गत राज्यों के प्रशस्ति-पत्र निकलवाकर अपने प्रशस्ति-पत्र लगवा दिये हैं।

इस प्रकार खंगारों के स्मृतिचिह्न और उनकी वीरता की गाथाएँ लोप कर दी गयी हैं। उन्हें अपने वास्तविक स्थान से हटाकर नीच और अछूत तक के दर्जे पर विजेता बुन्देला शासकों ने पहुँचा दिया है। खंगार लोग भी अपनी वास्तविकता को भूल बैठे हैं, किन्तु उनका जोशीला रक्त बागी मलखान सिंह जैसे वीरों को पैदा कर आपराधिक जीवन में भी अपनी वंश-परम्परा, देशभक्ति, उदारता और बहादुरी का परिचय देते रहते हैं।

—विश्वनाथ सिंह खंगार, पिछोर

बुन्देलखण्ड के महान् सन्त श्री भगवत रसिक

—बाबूलाल गोस्वामी

⊙

श्री भगवत रसिक जी का जन्म बुन्देलखण्ड क्षेत्र के अन्तर्गत छतरपुर में संवत् १७६५ में हुआ था। इनके शिष्य बिहारी वल्लभ के अनुसार जन्म-तिथि फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा है। छतरपुर से अपने एक सहयोगी प्रानप्यारे के साथ वृन्दावन गये थे और वहाँ से स्वामी हरिदास जी की वाणी लेकर छतरपुर लौट आये थे। गोपाल कवि रचित वृन्दावन-धामानुरागावली में इसका संकेत मिलता है—

> भगवत रसिक प्रानप्यारे दोऊ मिलि वृन्दाबन आये।
> बानी स्वामी जी की लै पुनि छत्रपुरहि सिधाये॥

ब्रज-साहित्य में श्री भगवत मुदित जी की भक्ति-साधना पर बहुत लिखा गया है। परन्तु माता-पिता तथा प्रारंभिक जीवन के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा गया। छतरपुर से पुनः जब वे वृन्दावन गये, तब उन्होंने अपनी समस्त सम्पत्ति को त्याग दिया था। इससे ज्ञात होता है कि वे साधारण परिवार के नहीं, सम्पन्न घराने के थे।

भगवत रसिक जी वृन्दावन में पहली बार श्री स्वामी हरिदास की टटिया स्थान-स्थित गद्दी के आचार्य श्री ललितमोहनीदास के आश्रय में रहे थे, जो ओड़छा के गोस्वामी श्री हरिराम 'व्यास' के वंशज थे। कुछ मास-दिन वहाँ रहकर श्री स्वामी हरिदास जी की वाणी का अध्ययन किया। दूसरी यात्रा में वे श्री ललितमोहनीदास के शिष्य होकर वृन्दावन में ही रहने लगे थे। थोड़े ही समय में भगवत रसिक जी का नाम धीर, गंभीर, उदार और धर्म-धुरन्धर प्रख्यात हो गया। श्री राधा-माधव के नित्य-विहार के प्रत्यक्ष द्रष्टा के रूप में वे 'रसिक' महात्मा माने जाने लगे। स्वामी हरिदास जी के भक्तितत्त्व और उनकी उपासना-पद्धति की विस्तार के साथ व्याख्या प्रथम बार भगवत रसिक के द्वारा ही प्रस्तुत की गयी। परन्तु वे मतवादों

के उलझाव में नहीं पड़े। निम्बार्क संप्रदाय के अन्तर्गत होते हुए भी 'द्वैताद्वैत' सिद्धान्त की अपेक्षा 'इच्छाद्वैत' का नूतन सिद्धान्त स्थापित किया।

नाहीं द्वैताद्वैत हरि नहीं विशिष्टाद्वैत।
बंध्यो नहीं मतवाद में, ईश्वर इच्छाद्वैत॥

स्वामी हरिदास जी की वाणी में साधना-सूत्रों के आधार पर भगवत रसिक जी ने उपासना का स्वरूप भी स्थिर किया है। साथ ही, प्रेमा-भक्ति और रसोपासना का उज्ज्वलतम स्वरूप नवीन ढंग से प्रस्तुत किया है। प्रेम के समक्ष नियम, जप, तप, व्रत, संयम तथा विधि-निषेध को अनावश्यक बताया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने अनन्य भाव-भक्ति में अपनी अवस्थिति भी प्रकट की है। इसके तात्त्विक विवेचन में सम्पूर्ण विश्व के सात आवरणों की व्याख्या करते हुए बताया है कि छठवें आवरण में सखी-समाज लीला-रस में अवगाहन कर रहा है तथा अंतिम आवरण में श्री राधारमण प्रिया-प्रियतम रूप में क्रीड़ा-परायण हैं। इसी सन्दर्भ में सखीभाव में नित्यविहार की सुकुमार उपासना के परिवेश में गोपीतत्त्व और सखीतत्त्व की सूक्ष्म भिन्नता का निदर्शन भी किया है। भगवत मुदित के मन में नित्यविहार में गोपियों की पहुँच नहीं है, उसे प्राप्त करने के लिये 'सखी भाव' एकमात्र मार्ग है। अतः आवरण के सन्दर्भ में गोपी और सखी का अन्तर स्पष्ट किया है। सखियों के बिना नित्यविहार संभव नहीं है। सखियों की कृपा से ही जीव नित्य-विहार के आनन्द का अनुभव करता है।

श्री भगवत रसिक जी को अनन्य नृपति श्री स्वामी हरिदास के संप्रदाय का प्रथम आचार्य माना जा सकता है। इनका वही स्थान है जैसा कि राधा-वल्लभ सम्प्रदाय में सेवक जी दामोदरदास का है और ये दोनों बुन्देलखण्ड के हैं। अतः ब्रज के अथवा वृन्दावनीय उपासना के दो प्रमुख सम्प्रदायों का वर्तमान स्वरूप बुन्देलखण्ड की महत्त्वपूर्ण देन है। हरिदासी संप्रदाय की रूपरेखा यद्यपि विहारिनदास जी ने भी प्रस्तुत की, परन्तु उसके नियामक और व्यवस्थापक भगवत रसिक हैं। उनकी ठोस रचनाओं के धरातल पर ही स्वामी हरिदास के संप्रदाय के उपासना मार्ग को अन्य संप्रदायों से अलग स्वीकार कर 'सखी संप्रदाय' के नाम से प्रचारित किया गया तथा इनके द्वारा निर्दिष्ट सखी संप्रदाय के स्वरूप को अंगीकार किया गया है—

संप्रदाय नवधा भगति, वेद सुरसरी नीर।
ललिता सखी उपासना, ज्यों सिंहिन कौ क्षीर।

ज्यों सिंहिन कौ क्षीर रहै कुन्दन के वासन।
कै बच्चा के पेट और घट करै विनासन॥
'भगवत' नित्य विहार परे सबही को परदा।
रहै निरंतर पास रसिकवर सखी संप्रदा॥

सखी सम्प्रदाय के प्रवर्तक-आचार्य ललिता सखी के अवतार श्री स्वामी हरिदास जी हैं, इसे स्पष्ट करते हुए भगवत रसिक जी कहते हैं—

"आचारज ललिता सखी रसिक हमारी छाप।
नित्य किशोर उपासना जुगल मन्त्र को जाप॥
जुगल मन्त्र को जाप वेद रसिकन की बानी।
श्री वृन्दावन धाम इष्ट श्यामा महारानी॥

सखी भाव में यही साधना, उपासना का आदर्श स्वरूप है। भगवत रसिक जी परमभक्त, परम विरक्त एवं सखी भाव में अनुरक्त महात्मा थे। प्रिया-प्रियतम के नित्यविहार की रसानुभूति करते रहना उनका लक्ष्य था। जागतिक प्रपंचों से दूर रहकर भजन, कीर्तन में ही उनका समय व्यतीत हुआ। यहां तक कि गुरु के देहावसान के बाद टटिया स्थान की गद्दी पर बैठने के प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया था। वे मनमौजी, अलमस्त और फक्कड़ महात्मा माने जाते हैं। उनके भीतर 'रास' का अहर्निश स्फुरण होने लगा था। इसी से श्री रामाश्रयी भक्ति शाखा के श्री मोहन रसिक जी ने वृन्दावन जाकर उनसे रास-ध्यान सीखा था। तत्पश्चात् भगवत रसिक जी वृन्दावन त्यागकर प्रयाग चले गये तथा वहीं उनका देहान्त हुआ, पर कब, यह अज्ञात है। प्रयाग प्रस्थान के सन्दर्भ में कहा जाता है कि वृन्दावन में व्याप्त तीव्र साम्प्रदायिक आग्रहों के कारण वे क्षुब्ध हुए और प्रयाग चले गये।

भगवत रसिक जी की रचनाओं के संग्रह को 'भगवत रसिक की वाणी' कहा जाता है। भक्ति साहित्य में समस्त रचनाएँ संग्रहीत कर 'अनन्य निश्चयात्म' ग्रन्थ के नाम से प्रकाशित हैं। रचनाओं का काव्यात्मक स्वरूप उच्चकोटि का है। जिस विषय और प्रसंग को लिया है, उसकी अभिव्यक्ति सुस्पष्ट और खुली है। उदाहरण तथा दृष्टान्तों के द्वारा अपनी बात सरलता से कहना इनकी विशिष्ट शैली है। जैसे—

'जो जानै मानै सोई, मानै क्यों बिन जान।
पीर प्रसूती की कहा, जानै बांझ अजान॥

जानै बाँझ अज्ञान, नपुंसक रति सुख नाहीं।
ऐसेहि नीरस पुरुष कहा समझे रस माहीं॥
'भगवत' नित्य विहार रसिक अनुभव उर आनै।
गूढ़ बात नभ जाति जानि बरही को जानै॥

माधुर्य भाव में नित्यविहार अर्थात् श्री श्यामा कुञ्ज विहारी की प्रेम-परक काम-क्रीड़ा का अनुभव भगवत रसिक जी को सतत होता रहता था; और उसी भाव में तन्मय होकर नित्यविहार के दृश्यों की मधुर कल्पना को मूर्त रूप देकर उन्होंने रसपूर्ण पद-रचना की है। अतः शृंगारपरक रस के पद, भाव और भाषा की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं।

भगवत रसिक की भाषा अत्यन्त प्रौढ़ है; मुहावरेदार है। लोकोक्तियों का प्रयोग सुन्दर ढंग से किया है। महात्मा अग्रदास की भाँति इन्होंने भी लोकोक्तियों पर आश्रित कुण्डलियाँ रची हैं, जो बहुत प्रचलित हैं। यथा—

चलनी में गैया दुहै, दोष दई कों देंहि।
हरि गुरु कह्यो न मानहीं, कियो आपनो लेंहि॥
कियो आपनो लेंहि, नहीं ईश्वर की इच्छा।
देश, काल, प्रारब्ध, देव, कोऊ करहि न रक्षा॥
मूरख, मरकट, मूठ, कीर, हठि तजै न नलिनी।
कहि 'भगवत' कह करैं भाग भोंडे कों चलनी॥

वैष्णवविरक्त परम्परा में जाति का महत्त्व नहीं है। भगवत रसिक ने जातिवाद को अमान्य किया है।

जाति-जाति जात सब, सब ही जाति कुजाति।
रसिक अनन्य अजात की, कहो कौन सी जाति॥
कहो कौन सी जाति सजाती मिलै सु जानै।
विमुख विजाती देह, खेह की जाति बखानै॥
निज स्वरूप नहिं लखै, विवादी बात-बात में।
'भगवत' भक्त न तेय, जक्त सब जाति-जाति में॥

भगवत रसिक के पास शब्द शक्ति भी असीम है। अलंकारों ने स्वाभाविक ढंग से इनके काव्य का अनुगमन किया है। सिद्धान्त के पद ओज गुन सम्पन्न हैं। दोहा, कुण्डलिया, सवैया, कवित्त, माँझ, रेखता, अरिल्ल, अष्टपदी, छप्पय, चौबोला छंदों का प्रयोग जगह-जगह किया है। राग-

रागिनियों में गेय पदों की शैली अलग दीखती है। नित्यविहार सम्बन्धी पदों में श्री श्यामा-श्याम की अन्तरंग लीलाओं के वर्णन से लगता है कि जैसे भगवत रसिक जी प्रत्यक्ष देखकर लिख रहे हों। वे देखते हैं कि श्री विहारी-विहारिनि हृदय से दोनों ऐसे मिले हैं जैसे श्याम तमाल में कनक बेलि लिपटी हो। सखियाँ कोक-कला-गुणगान से इस विहार को प्रेम-जल से सींचती हैं। यह कौतुक भगवत सखी की हृदय भूमि पर अंकित है—

'सखी यह कौतुक देखो आय।
श्याम तमाल कनक बेली, रही मनो लपटाय॥
'भगवत रसिक' हृदय अवनी पर विलसत सहज सुभाय॥
प्रेम सलिल सखि सींचहीं हो, कोक-कला-गुन गाय॥
बीज विचित्र विहारी-विहारिनि, नाम ललित सरसाय॥

श्री श्यामा-श्याम की प्रेम लीला में जब 'मान' की स्थिति आती है तब वहाँ सखी ही प्रिया-प्रियतम की मध्यस्थता करती है। श्री श्यामा जी रुष्ट हैं तो प्रियतम श्रीकृष्ण में इतना साहस नहीं कि श्री राधा से सीधे बात कर सकें। अतः वे ललिता सखी से आग्रहपूर्ण निवेदन करते हैं। इस भाव में डूबकर भगवत रसिक कहते हैं—

भूली भाव भावतीं भोरें।
बैठी मुरकि पीठिदैं, पिय उर मान आन तनु गोरें॥
भौंह मरोर मौन सुख नीचे नैन नेह सौं टोरें।
नख छिति लिखित अछित ललिता के लाल कहैं कर जोरें॥
कियो कहा अपराध सखी में, रहों निकट नित तोरें।
कौन सुभाव परो प्यारी कों, रस में विरस घोरें॥
करि उपाय समुझाय स्वामिनी, रहै न धीरज मोरें।
'भगवत रसिक' बलैयाँ लै लै फिरि-फिरि नाह निहोरें॥

सखी भाव भगवत रसिक की दृष्टि में कुछ विशिष्ट परिवेश में है जो रति-काम समन्वित है। परन्तु यह रति-काम प्राकृत अथवा जागतिक न होकर, दिव्य है और दिव्य काम व्यापकता, सखी या सहचरी, ऐश्वर्य, पूज्य और आचार्य इसके पाँच अंग भी रति-काम के रूप हैं। प्रिया और प्रियतम दोनों में प्रेम की विपुलता ही काम का स्वरूप है। वही काम सखी रूप में ढलकर प्रिया-प्रियतम की सेवा हेतु प्रस्तुत है। इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—

"विवि तनु व्यापक विपुल प्रेम बस कीनै दम्पति ।
सेवत सहचरि रूप सहज नैनन की सम्पति ॥
मीन-केत, ऐश्वर्य सुमनसर सारंग चारी ।
जगत पूज्य हेरम्य सर्व सुख मंगलकारी ॥
आचारज 'भगवत रसिक' कहैं गुण धाम के ।
विश्व विदित आनन्द में पाँच रूप रति काम के ॥"

सखी भाव में स्व-सुख की कामना रंचमात्र नहीं बल्कि, वर्जित भी है। साधक की समस्त क्रियाएँ दम्पति स्वरूप श्री राधा-कृष्ण की प्रीति विधान हेतु होती हैं और दोनों की अकुलाहट में सखी उनकी सहायता करती है। इसे तत्सुखीभाव भी कहते हैं। भगवत रसिक कहते हैं—

"गावें हम सोई करैं, सहज लाड़िली-लाल ।
करैं लाड़िली-लाल सो हम गावें तत्काल ॥
हम गावें तत्काल, सूत दुई दिसिकौ ऐसौ ।
बुध जन लेहु विचार, कमल दिवाकर जैसो ॥
'भगवत रसिक' मुदित अनुदिन गावें" × ×

अर्थात् सखी और दम्पति दोनों के मन में एक ऐसी डोर लगी हुई है कि सखियाँ जो गाती हैं, लाड़िली-लाल वही क्रीड़ा करने लगते हैं तथा लाड़िली-लाल जो क्रीड़ा करते हैं, वही सखियाँ गाने लगती हैं। दोनों में कमल और सूर्य जैसा सम्बन्ध है। इसी में भगवत रसिक जी की रुचि है जिसे प्रतिदिन वे गाते रहते हैं। मुख्य बात यह है कि वृन्दावनीय मधुर उपासना में वृन्दावन नित्य है। वहीं 'रमनीय-कमनीय' निकुंज श्री श्यामा-श्याम के क्रीड़ा-विलास का स्थान है, जिसे वाणी-वाङ्मय में 'रंगमहल' या 'महल' कहा है। इसी महल में 'प्रिया-प्रियतम' क्रीड़ा-परायण हैं। उपासक वहाँ पहुँचकर सतत लीला-रस का आस्वादन करता है। परन्तु यह सखी या सहचरि रूप में ही सम्भव है। भगवत रसिक जी अपने गन्तव्य पर पहुँचे दीखते हैं। उन्हीं के शब्दों में—

"हैं हम रसिक अनन्य, प्रिया-प्रीतम कुंजमहल के वासी ।
नई-नई केलि विलोकें, क्षण-क्षण रति विपरीत उपासी ॥
वीरी, बसन, सुगन्ध, आरसी, रुख लै करत खवासी ।
देत प्रसाद प्रेम सों हँसि-हँसि, कह-कह भगवत दासी ॥

'सुख' से अभिप्राय 'इच्छाहीन' से है और इस स्थिति में सुखमयी स्थिति में 'भगवत सखी' प्रिया-प्रियतम को वस्त्र सवाँरते, मुकुर लगाये देख रहे हैं—

"अधर मद पाइ प्रसन्न भये ।
भूषन, बसन सम्हारि सहचरी नव सत सहज नये ॥
लोचन मुकुर विलोकि परस्पर चूमि कपोल लये ।
'भगवत रसिक' रसभरी बतियाँ कहि मन मोद दये ॥"

सखी भाव की उपासना में 'निकुंज महल' की लीला ही उपास्य है जो किसी दार्शनिक पृष्ठभूमि पर आधारित नहीं है बल्कि, एक ही रस के दो रूप नित्य प्रगाढ़तम प्रेम-विग्रह के रूप में क्रीड़ा-परायण हैं। यही 'भाव' आगे चलकर 'महाभाव' में परिणत होता है। इसे रसिक ही जान सकते हैं—

तुव मुख चन्द्र चकोर ये नैना ।
अति अनुरागी लंपट, भूल गई गति पलहू लगै ना ॥
अरबरात मिलिबे को निस दिन मिलेई रहत, मनु कबहूँ मिलै ना ।
'भगवत रसिक', रसिक की बातें, रसिक बिना कोऊ समुझि सकै ना ॥

× × ×

'भगवत' यह रस-रीति प्रगट परिपूरण ससमा ।
प्रेम पियूष सबै भाव रूपी बिनु चसमा ।

—बिहारी जी मार्ग, दतिया

आजी

—प्रीता व्यास

⊙

जून की तेज धूप वाली दोपहर में डामर की सुनसान सड़क पर रिक्शा चला जा रहा था। सब ओर शान्ति छाई थी, उस तेज धूप में इक्के-दुक्के लोग ही आते-जाते दिखाई दे रहे थे। रिक्शे वाला धीमे स्वर में कोई लोक-गीत गुनगुना रहा था जिसका उतार अक्सर रिक्शे की चरमराहट में डूब जाता था।

भावों का ज्वार-भाटा संभाले खामोश बैठी थी मैं। न जाने आजी के बिना कैसा लगता होगा अब बँगला ? जाने कहाँ-कहाँ की बातें एक-एक कर आतीं और मन के दरवाजे को खटखटा कर लौट जातीं। हर आहट पर खोलने पड़ते मुझको स्मृतियों के द्वार। आजी के साथ बिताये पल याद आ-आ कर मन की पीड़ा को और बढ़ा जाते। कभी किसी रूप में तो कभी किसी रूप में आजी मुझे याद हो आतीं।

जब यहाँ पढ़ती थी तब ऐसे ही तो कालेज से लौट कर जाया करती थी मैं रिक्शे से। आजी भरी दोपहर में फाटक के पास खड़ी अपनी रुक्की का इन्तजार करते मिलती थीं। काश, आज भी मैं कालेज से ही लौट रही होती, आजी फिर एक बार खड़ी मिल जातीं प्रतीक्षा में, कम-से-कम जी भरकर देख तो लेती। एक मोटा-सा आँसू रिस पड़ा आँख की कोर से।

बँगले के आगे पहुँच कर रिक्शा रुका तो विचार-निद्रा टूटी मेरी। उसे पैसे देकर मुड़ी तो अन्दर कुछ तेजी से धड़कता हुआ साफ महसूस हुआ था। क्या मैं वाकई उसी बँगले के आगे खड़ी हूँ जिसे तीन साल पहले सजा-धजा छोड़कर गई थी ? हल्के गुलाबी रंग से व्हाइट शेड के साथ पुती रहने वाली दीवारों की सारी चमक बारिश के पानी से धुल-धुल कर खत्म हो गयी थी और मैली-भद्दी दीवारें खड़ी रह गई थीं। दरवाजों और खिड़कियों पर हुए ग्रे कलर के पेण्ट की चमक भी धुंधला गई थी। रोशनदान में लगे बेशकीमती काँच टूट चुके थे और उनकी चंद टेढ़ी-मेढ़ी किरचें अवशेष रूप में रोशनदान के फ्रेम में अटकी रह गयी थीं। बायीं ओर वाले कमरे के एक ओर जहाँ छत का पानी गिरने के लिए नाली बनी थी—काई की खासी मोटी पर्तें जम गई थी जो गर्मियों की तेज धूप खाकर कड़ी पड़ गई थी और जगह-जगह से चटख कर झड़ रही थी। बँगले की हालत देख कर लगा था कि आजी के जाने की घटना अकेले मेरे लिए ही दुःखद साबित नहीं हुई, अकेली मैं ही नहीं रोई, घर का जर्रा-जर्रा दुःखी हुआ है, जर्रा-जर्रा रोया है। ओफ···क्यों चली गईं आजी तुम ? क्यों···? मैं तो जड़-मूल से टूट गई, मुझे कुछ नहीं सुहाता तुम्हारे बगैर। भावावेश में मैं वहीं गेट से सर टिका कर रो पड़ी। पसीने की एक बूंद कान के पास से बही और गर्दन पर से लुढ़कते हुए कुर्ते को भिगो गई। तेज लू से, पास ही लगे किसी पेड़ का पत्ता टूटा, उड़कर मेरे गाल से टकराया और गिर पड़ा। चौंक गई थी मैं। पैरों के पास पड़े सूख कर भूरे हो गए पत्ते को खाली निगाहों से कुछ पल देखती रही, जाने कैसे वो दोहा याद हो आया —आजी अक्सर गाती थीं—

"पत्ता टूटा डाल से ले गई पवन उड़ाय,
अब के बिछुड़े ना मिलें लाखन करो उपाय।"

तो क्या तुम वाकई नहीं लौटोगी आजी ? एक फीकी-सी आकृति आँखों में बनी आजी की जो आँसुओं के संग पिघल कर बह गई। अन्दर जाने की इच्छा ही नहीं हो रही थी हालांकि मैं खुद ही आई थी कि चलकर बँगले को तो देख आऊँ, कुछ दिन वहाँ रह आऊँ—आजी की स्मृतियों के बीच। पर अब मन होता है सामान उठाऊँ और वापस चली जाऊँ, अब कौन-सा आकर्षण शेष रहा है ? आजी तो गईं।

बेमन से फाटक का ताला खोला, अन्दर बगीचे में फूलों भरे नन्हें पौधों की कतारों की जगह बेतरतीब उग आये पमार के पौधों के सूखे डण्ठलों ने स्वागत किया मेरा। उनके बीच से निकल कर बरामदे में आई और वहाँ लगे दरवाजे पर ताले को खोलकर अन्दर दाखिल हुई। ड्राइंगरूम में सारी चीजें वैसी ही रखी थीं—वही सोफा, वही दीवान, वही बड़ी-सी मेज लेकिन सब पर मोटी पर्तें जमी हुई थी धूल की। कॉर्नर पर वही सीनरी लगी थी जो मुझे बेहद पसन्द थी, आजी उसे कितना साफ-सुथरा रखती थीं। उसके पास रखे पीतल के गुलदस्ते काले पड़ गये थे। मैंने सीनरी पर हल्के-से उँगली

फेरी, तो धूल जमी होने के कारण निशान बन गए मेरी उँगली के। उसमें बने ऊँचे-ऊँचे यूकेलिप्टस के पेड़ों से, लहर खा कर मुड़ गई सड़क से डूबते सूरज की लालिमा में नहाई शाम से धीमे से पूछा था मैंने—तुम्हें आजी की याद नहीं आती ? तब लगा था मुझे जैसे पेड़ों की पतली-पतली शाखाओं ने, एक-एक पत्ती ने कहा हो—"हमारा बस चलता तो हम आजी को न जाने देते।"

एक गहरी साँस छोड़कर अन्दर वाला कमरा खोला। इस कमरे मे आजी पूजा किया करती थीं। कैसे तन्मय होकर घण्टों बैठी रहती थीं। लगा था जैसे अभी भी उस कमरे में अगरबत्ती की हल्की खुशबू तैर रही हो। भगवान् की चौकी खाली पड़ी थी। आजी के इष्टदेव की पूजा-अर्चना का काम अब मम्मी करती हैं। आजी के निधन के बाद यहाँ का अधिकांश सामान मम्मी वहाँ ले गई थीं, यहाँ पड़ा-पड़ा खराब ही तो होता, देखभाल करने वाला भी तो कोई नहीं है यहाँ। बाबा ने तो संन्यास ले लिया आजी के जाने के बाद। आठ-दस महीने में कभी-कभी पापा या भाई साहब चक्कर लगा जाते हैं—एक-दो दिन को, बस तब जरा सफाई हो जाती है। पापा ने तो इन्दौर में नया बँगला भी बनवाना शुरू कर दिया है, कह रहे थे यहाँ मुझे सर्विस करते बीस साल से ऊपर हो गया है, अधिकांश लोग जान-पहचान के हैं—इसलिए यहीं बनवाये लेते हैं मकान। वहाँ तो अब मुझे कोई जानता भी नहीं। वहाँ के बँगले को बेच देंगे और वो पैसा भी इस नए बँगले में लगा देंगे। एक हल्की-सी तड़प अपने अन्दर महसूस हुई मुझे—पापा क्या सचमुच बेच देंगे इस बँगले को ? मेरी काँपती उँगलियाँ दीवार पर टिक गईं, नहीं नहीं···मैं नहीं बेचने दूंगी। आजी ने कितने मन से बनवाया था, इसे बेच देंगे पापा ? आजी खुद आया करती थीं काम देखने—चाहे तेज धूप हो या कड़ी ठंड। सामने, जहाँ अब किसी का मकान बन गया है, पहले वहाँ एक चिल्ली का पेड़ था। आजी उसी के नीचे एक पत्थर पर बैठी रहा करती थीं। मकान बनकर पूरा हुआ था तब कितना सुन्दर लगता था, पूरे शहर में एकलौता था।

खूब धूमधाम से वसंत पंचमी को फिर इस नये घर में प्रवेश किया गया था। शहर के सारे परिचित व्यक्तियों को दावत दी गई थी। फिर मैं, आजी और बाबा तीनों इस घर में रहने लगे थे। मुझे भी तो इसकी हर खिड़की हर दीवार प्यारी है। दो साल बाद मेरा पी. एम. टी. में सेलेक्शन हो गया था और मैं मेडीकल की पढ़ाई के लिए इन्दौर चली गई थी। आजी और

बाबा अकेले रह गये थे। आजी बहुत प्यार करती थीं मुझे—जाते समय रो दी थीं, कह रही थीं मुझे आज इतना अजीब लग रहा है एक तरफ तेरे मेडीकल में जाने की खुशी है तो दूसरी ओर तुझे छोड़ने का उतना ही दुःख, न हँस पा रही हूँ, न रो पा रही हूँ। जाना जरूरी था इसलिए चली गई थी मैं। आजी के बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। कैसे भीगे-भीगे पत्र आया करते थे आजी के, पढ़कर लगता था पंख होते तो उड़कर जल्दी से आजी के पास पहुँच जाती। बताती उन्हें कि उनकी रुक्की को भी अच्छा नहीं लगता उनके बगैर। साल-छह महीनों में कभी-कभार दस-पन्द्रह दिनों को इन्दौर आ जाती थीं आजी। मेरा मन होता था कहूँ कि यहीं रह जाओ आजी एक-दो महीनों को पर मम्मी के डर से कुछ नहीं कह पाती थी। मम्मी को पसंद नहीं था कि आजी वहाँ रहें—अपनी स्वच्छंदता छिनती मालूम होती थी उन्हें हालाँकि आजी ने उन्हें कभी किसी काम के लिए रोका नहीं होगा। आजी भी समझती थीं इस बात को इसलिए जल्दी ही लौट जाती थीं। जाने वाले दिन कितना रोती थीं आजी, मैं भी तो अधमरी-सी हो जाती थी रो-रो कर। सामने पड़ने पर हम कैसे तटस्थ हो जाते थे जैसे हमें बिछुड़ने का जरा भी गम न हो पर अलग-अलग, अपने-अपने कमरों में हम कितना रोया करते थे—शायद वो दीवारें बता पायें। आजी कहती थीं—"तेरा मोह खींच लाता है मुझे वरना मुझे यहाँ आना नहीं चाहिये।" अन्दर-ही-अन्दर बुझती जा रही थीं आजी। आजी के जाने के बाद के दो-तीन दिन खुद को संयत करने में लग जाते थे। जाने कहाँ विलुप्त हो जाते थे व्यावहारिक धरातल के सारे सिद्धान्त उन दिनों। बड़ी मुश्किल से सँभलता था मन। और अब...? अब तो मन सँभाले नहीं सँभलता। आजी क्यों चली गईं तुम ? क्यों ? जाते वक्त क्या याद भी न आई रुक्की ?

सरकार की ओर से मुझे फॉरेन फैलोशिप मिली थी। मैं गई भी थी—एक साल के लिए। जाते समय आजी से मिलने नहीं आ पाई थी। वहाँ से लौट रही थी तब कितनी खुशी थी मैं। सोच रही थी कि दिल्ली पहुँचकर "ज्वाइन" करने के बाद छुट्टी लेकर सीधे आजी के पास जाऊँगी। लिपट जाऊँगी आजी से कहूँगी—आजी देखो लौट आई तुम्हारी रुक्की, तुम्हारे पास, अब तो सिविल सर्जन होकर आई है, अब अपने से दूर नहीं रखेगी तुम्हें, चलो मेरे साथ—दिल्ली रहना अब। अलगाव के इन आठ सालों की सारी वेदना धो डालने को कैसे उल्लसित मन से आई थी मैं।

मेरे आने की खबर मिलेगी तो आजी-बाबा कितने खुश होंगे । तैयारी में जुट जायेंगे, बरसों बाद आ रही है उनकी रुक्की लौटकर—खातिरदारी में कमी न रह जाए । रुक्की की पसंद के पर्दे, रुक्की की पसंद की डेकोरेशन, रुक्की की पसंद का खाना । ऐसा न हो रुक्की को यहाँ कोई चीज भी ऐसी मिले जो उसे पसंद न हो । जैसे ही याद आता बाबा झोला उठा कर बाजार चल देते होंगे—"अरे लिस्ट में रसगुल्ले और चॉकलेटी बर्फी तो रह गई, अभी लाता हूँ, रुक्की को दोनों चीजें बेहद पसंद हैं । "आजी सोचती होंगी रुक्की आयेगी तो ये बनायेंगे वो बनायेंगे, सोच रही थी मैं । तब मुझे क्या मालूम था कि आजी को मेरा इन्तजार नहीं रहा । वो तो तोड़ चुकी हैं—मोह-माया की सारी सीमाएं ।

यहाँ आने पर भाई साहब ने बताया था कि "आजी तो तुम्हारे अमेरिका जाने के दस दिन बाद ही चल बसी थीं ।" "क्या ? क्या बोल रहे हैं भाई-साहब आप ?" मैं चौंक गई थी ।

"सच बता रहा हूँ ।"

"तो-तो मुझे लिखा क्यों नहीं ?" शब्द—लड़खड़ा गये थे ।

"उसमें लिखने जैसा क्या था, उन्हें तो जाना ही था एक ना एक दिन—बूढ़ी कितनी हो गई थीं । लिख देते तो तुम बेकार परेशान हो जाती इसलिए पापा ने मना कर दिया था ।"

मैं वहाँ से चुपचाप उठ आई थी । अजीब-सी टीस भर गई थी मन में । भाई साहब का एक-एक शब्द हथौड़े की चोट-सा लगा था मुझे । कैसे अजीब लोग हैं—मुझे लिखा तक नहीं । आजी चली गईं । मैं ना देख पाई उन्हें ना कुछ कह पाई उनसे । मानसिक यन्त्रणा के एक भयानक दौर से गुजर रही थी मैं । लगता था जैसे दिमाग की सारी नसें फट जायेंगी—जैसे मैं पागल हो जाऊँगी । "आया है जो जायेगा, राजा रंक फकीर," "शरीर नश्वर है, जो आया है तो वो जायेगा ही," "किसी से इतना जुड़ना नहीं चाहिए कि बाद में उसका मोह मन को विक्षिप्त कर दे"—ऐसी ही और भी जाने कितनी बातें सोचती थी—मन को बाँधने को पर वो तो एकदम बेकाबू हो गया था । आजी, आजी और बस आजी । तब से साफ महसूस होता है अन्दर कुछ मरता जा रहा है । मेरा बहुत बड़ा सम्बल थीं आजी । बचपन में जब बहुत बीमार होती थी मैं, तब न जाने कैसा अजीब-सा डर लगा करता

था । आजी कहती थीं—"जब तक मैं हूँ तुझे कुछ नहीं होगा ।" और फिर जाने कितना ढेर सारा साहस भर जाता था मेरे अन्दर—"मुझे कुछ नहीं होगा ।" आजी पास हों या दूर, मैं किसी भी परिस्थिति में कभी हार नहीं पाई पर अब लगता है जैसे मेरा वही आत्मिक साहस मरता जा रहा है ।

कदम धीरे-धीरे बढ़े आँगन का दरवाजा खोला, लग रहा था मानो मैं घर के दरवाजे नहीं, स्मृतियों के द्वार खोल रही हूँ एक-एक कर । आँगन में खुलने वाला दरवाजा बेडरूम का है । आजी हमेशा मेरे पास सोती थीं । जाड़ों में कैसे बार-बार उठकर रजाई उढ़ाया करती थीं मुझे, मैं तो सोती भी जाने किस तरीके से थी, थोड़ी देर बाद पूरी रजाई पलँग के नीचे और मैं ठिठुरती रहती थी वैसे ही पड़ी-पड़ी ।

यादों के प्रवाह में बहते ये मालूम ही न चला कि मैं कब बेडरूम से निकल कर आँगन में आ गई । आँगन में बिछी टेढ़ी-मेढ़ी पत्थर की पाट के सिरे की ठोकर न लगती तो और भी जाने कितनी स्मृतियों में जी लेती मैं । "तुझे कितनी बार कहा रुक्की आँगन का फर्श कच्चा है, टेढ़ी-मेढ़ी चीपें लगी हुई हैं, सँभलकर देखकर चला कर, लगा लिया ना पैर में ।" मैं चौंक पड़ी थी—कहाँ से आई आजी की आवाज ? आजी ने ही तो कहा था ना ? नहीं, कहा नहीं कहा करती थीं, आज तो मेरी ही अन्तश्चेतना ने दुहरा दिया है आजी का वाक्य । आजी...?

घर के हर कमरे में आजी ही आजी की खुशबू तैरती मिली मुझे । थोड़े दिन को फिर लौट आयें वो गुजरे पल तो कितना अच्छा हो, मैं थोड़ा और जीना चाहती हूँ अभी, आजी कुछ दिनों को लौट आओ, लौट आओ न आजी प्लीज ।

किचिन के दरवाजे तक निगाह गई थी तो लगा था अभी आजी निकल पड़ेंगी वहाँ से हाथों में मेरी पसंद की ढेर-ढेर चीजों से भरी ट्रे लिए हुए, फिर जिद करके, मना-मना के ढेर सारा खिला देंगी मुझे, जानती हैं रुक्की खाने के मामले में कच्ची है, जबरदस्ती ही खिलाना पड़ता है उसे । आजी तुम्हें कैसे भूल पायेगी तुम्हारी रुक्की ? सब तो अपने-अपने में व्यस्त हो गये—उन्हें तुम्हारे जाने, न जाने से क्या फर्क पड़ता है ? तुम्हारे जाने का धक्का तो सिर्फ बाबा को लगा, दुःख तो सिर्फ रुक्की को हुआ, और तो कोई जुड़ा ही नहीं था तुमसे । मैं तुम्हें भुलूंगी कैसे आजी ? मेरे तो रोम-रोम में

जैसे तुम्हारा स्नेह, तुम्हारी छाया बसी हुई है। जितना मुश्किल तुम्हारा लौटना है उतना ही मुश्किल मेरा तुम्हें भूल पाना है। मन का एक कोना कैसा सूना हो गया आजी, वो तो भर नहीं पाएगा अब उम्र भर, तुम्हारे अलावा कौन भर सकता है उस खालीपन को। कभी...कभी लौट कर आना ना आजी। तुम्हीं बताओ मैं कैसे गुजारूँगी जिन्दगी इतने खालीपन के साथ।

निढाल-सी होकर, आँगन में छत पर जाने को बनी सीढ़ियों पर बैठ गई थी मैं। आँखें अनजाने ही ऊपर को उठ गईं—आकाश को बेध कर उस पार आजी को ढूंढ़ना चाहती थी शायद, मर कर वहीं तो जाता है आदमी। लग रहा था भगवान् मेरे सामने आ जायें तो पूछूं कि क्यों ले गये मेरी आजी को? कम-से-कम मुझे मिल तो लेने दिया होता। पर फिर ये सोच कर चुप हो गई कि ये तो कुछ ऐसी ही बात हुई जैसे कोई माली कुछ देर को कहीं चला जाये लौट कर आए तो बाग में टूटे हुए फूल देखकर दुःखी हो, क्रोधित हो पूछे कि फूल किसने तोड़े और मालिक मुस्कुरा कर कह दे—मैंने। मालिक का तो अधिकार है फूलों पर चाहे तो उन्हें मुस्कुराने दे और चाहे तो मसल कर फेंक दे। माली तो सिर्फ रखवाला है, उसे दुःख हुआ हो तो रो सकता है पर शिकायत करने कहाँ जायेगा—फूल खुद मालिक ने तोड़ा है।

एक गहरी सांस छोड़कर रोने के कारण सूज आई पलकों को गदेलियों से ढँकते हुए सोचा मैंने जो किया मालिक ने वो ठीक ही तो किया—अपने सारे नियम थोड़े ही तोड़ देता वो रुक्की के जरा से मोह के पीछे।

—नरसिंह पुरवा कॉलोनी
छतरपुर (म० प्र०) 471001

प्रश्न

—आभा श्रीवास्तव

⊙

—शलभ, तुमने समाचार-पत्र नहीं पढ़ा? पापा का स्वर सुनकर उसने निगाहें ऊँची कीं। पुस्तक वहीं रखी और खड़ा हो गया। कमरे से बाहर आकर बोला—पापा, गृहकार्य कर लूं पहले, अभी काफी पड़ा हुआ है।

—हाँ-हाँ पूरा कर लो, फिर पढ़ लेना। रेडियो सुनते हो न? खबरें जरूर सुन लिया करो। कहकर पापा सोने चले गये। सुबह उन्हें जल्दी उठना पड़ता है न।

माँ शायद रसोई-घर में काम निपटा रही है। शलभ रसोई की खटर-पटर से ध्यान हटा कर गणित का हल निकालने लगा। इस प्रश्न का उत्तर नहीं आ रहा है। पापा से पूछ नहीं पाया। क्या करूँ, माँ से पूछूँ?

लो बेटा, दूध पी लो।

—रख दो माँ, पी लूंगा। उसने माँ की तरफ देखा, फिर कॉपी बढ़ा दी, इसका उत्तर नहीं आता माँ, तुम बता दो।

माँ ने कॉपी पर दृष्टि डाली और उसके द्वारा निकाले सवाल पर एक स्थान में अँगुली रख दी। वह मुस्करा पड़ा।

—बस यही छोटी-सी गलती थी, जिसे तू समझ नहीं पा रहा था। आज सो ले, कल रविवार है। जल्दी उठकर पढ़ लेना।

— तुम सोओ माँ, पूरा हो जायेगा तो सो जाऊँगा।

उसने विज्ञान की कॉपी व पुस्तक निकाल ली थी। माँ ने कोई प्रतिरोध नहीं किया, चली गयी। उसने जाती हुई माँ की ओर देखा। कितना थक जाती है। दिन भर की दौड़ा-धापी में। सुबह से जो उठी, तो सोते समय ही आराम मिलता है। घर और नौकरी, दो पाटों के बीच जो खड़ी है। माँ उसे बहुत प्यार करती हैं। कहती हैं—मेरा बेटा बड़ा समझदार है। यह नासमझ होता, तो क्या मैं नौकरी कर पाती। बाहर के जाने कितने काम कर

देता है। आजकल तो जिनके बच्चे अच्छे निकल गये, भाग्यशाली हैं वो। नहीं तो उनके बिगड़ने के कितने रास्ते हैं।

उसने दूध पीकर ग्लास रख दिया। घड़ी देखी तो ग्यारह बज रहा था। कक्षा आठ में प्रथम लाना क्या इतना आसान है। बिना रात-दिन एक किये कैसे सफलता मिलेगी। मम्मी कह रही थी—कल रविवार है। कहीं मिलता है उस दिन समय। आठ बजे नाश्ते के बाद उसे कल हाट करनी होगी। पूरी-की-पूरी लिस्ट लेकर भारी भरे थैले साइकिल में लटका कर लायेगा, हाँफता हुआ। क्या हुआ पास है बाजार। धूप व भीड़ में कैसी थकान चढ़ती है। दो वर्ष पहले की बात है। बुआ आयी हुई थी। जाने लगीं तो अकेली थीं, बोलीं—

—शलभ को ले जाती हूँ। छोड़ कर आ जायेगा।

उसको तो पसीना आ गया था। उसने अकेले यात्रा ही नहीं की थी। कह दिया—मैं अकेले कैसे आऊँगा ?

—क्या, मैं तुझे पहुँचाने आऊँगी, दुगुना किराया लगाकर ? अकेले आने में तुझे कोई खा जायेगा। आजकल तो छोटे-छोटे बच्चे भी कितने होशियार होते हैं। यह ..। वह कुछ नहीं कह पाया। माँ नाना के यहाँ गयी हुई थीं, नहीं तो उसका पक्ष शायद ले लेतीं। सभी तरह की जानकारी रखना कितना आवश्यक है।

आजकल दादाजी आये हुए हैं। शमा उनके ही ऊपर लदी रहती है। बड़ी नटखट है।

—भैया आओ, दादा कहानी सुनायेंगे।

—सच ? खुश होता हुआ वह भी दादा के पास आकर बैठ गया। दादा जादूगर की कितनी अच्छी कहानी सुनाते हैं। दादा कहानी सुना रहे हैं और उसका ध्यान घड़ी की ओर बराबर टिका हुआ है। राजकुमार अभी जादूगर की पहाड़ी पर पहुँचा ही था कि वह खड़ा हो गया। बीच में ही टोक दिया—अब कल सुनूँगा। मेरा पढ़ने का समय हो गया।

—भैया आज सुन लो। मैं तो आज ही सुनूँगी।

शमा ने उसको खींचा किन्तु वह नहीं रुका। नहीं, कल। तेरा क्या, कक्षा चार की भी कोई पढ़ाई है। अगर प्रथम नहीं आया, तो डाँट पड़ेगी। मेरी हँसी भी तो होगी।—कहकर वह चला गया। काश, वह कहानी पूरी सुन लेता। कल तो वह और भी नहीं सुन पायेगा, परसों टेस्ट जो है।

—शलभ, प्रेस बिगड़ गयी है। तुम्हारी यूनीफार्म धो दी थी। कल क्या पहनोगे ?

—कल तो मेरा टेस्ट है। स्कूल तो जाना ही है। वह रुआँसा हो गया। माँ ने समझाया—दुःखी नहीं होते बेटा, लो तुम धोबी से प्रेस करवा लाओ। उन्होंने पैसे और चार-छह कपड़े उसे थमा दिये। लो आधा पौन घंटा बेकार हुआ। इतने में तो जाने कितना याद हो जाता।

—आज माँ की तबीयत ठीक नहीं है। शलभ, उठो बेटा, मैं डॉक्टर के पास जाता हूँ। तुम शमा और दादा के लिए चाय बना दो, डबल रोटी रखी है।

शलभ रात को दो बजे सोया था। उनींदा-सा उठ बैठा। शमा को स्कूल भी जाना है। माँ की तबीयत बिगड़ जाने पर आधा काम उसका होता है। पापा जब अस्वस्थ होते हैं या उनके पास समय नहीं होता, तब भी शलभ दौड़ता है। स्कूटर कार भी नहीं है कि घड़घड़ाते चले जाओ। बस पकड़नी होती है, हर तरफ या फिर साइकिल लेकर जाना पड़ता है। पापा कहते हैं—हम मध्यमवर्गीय लोग हैं, हमें अपना स्टैण्डर्ड भी मेनटेन करना होता है। क्या मैं नहीं चाहता कि मेरे बच्चे सबसे अच्छे स्कूल में पढ़ें, उनके पास हर वस्तु हो। एक-से-एक कपड़े हों। घूमें, फिरें, मस्त रहें, लेकिन...।

माँ के लिये वह दवा ले आया था। उन्हें अब आराम है। हाँ, कमजोरी है, जो फल-दूध कम मिलने के कारण देर से जायेगी। माँ ने उसका माथा चूम लिया था—कितनी अच्छी तरह सारा घर सँभाल लिया।

स्कूल से पिकनिक गयी थी, वह नहीं गया। उसके पास पैसे नहीं थे न। भला कैसे जाता वह। निखिल कह रहा था—शलभ, तुम हँसते बहुत कम हो। तू भी चल न, मजा आयेगा।

—माँ की तबीयत ठीक नहीं है।

उसने न में गरदन हिलाई तो निखिल बोला—अरे, तबीयत तो मेरी मम्मी की भी ठीक नहीं है। लेकिन मैं तो जा रहा हूँ। जैसे वह छोटा-सा बच्चा हो कि कुछ समझता ही नहीं। क्या उसे नहीं मालूम कि पचासों नौकर, आया हाथ बाँधे घूमते हैं इनके घर में। शान से पसरे रहना है इनकी मम्मी को। मैं चला जाऊँगा तो माँ की सहायता कौन करेगा। वह इन लोगों को यह बात थोड़े ही बतायेगा, नहीं तो लड़की कहकर हँसी उड़ायेंगे सब।

दादा के पास शमा के साथ वह भी बैठ गया था। दादा अपने बचपन की घटनाएँ बता रहे थे—बड़ा शैतान था मैं। जामुन के पेड़ में चुपके से चढ़ जाता था और झोला भर जामुन तोड़ लाता था। जब तेज आँधी आती थी तो बाहर भागता था अन्धड़ में। कच्चे आम तड़ातड़ गिरते थे और सारे बच्चे समेटते चले जाते थे छीन-झपट कर।

कितने मजे लिये हैं दादाजी ने। यहाँ कालोनी में आम, जामुन का पेड़ ही नहीं है। न समय होता है उसके पास कि किसी के यहाँ लगे अमरूद-आम पेड़ से तोड़े। खुली हवा में दौड़ कहाँ लगायेगा। यहाँ तो शुद्ध वायु ही नहीं मिलती। सुबह से जो उठा तो पता ही नहीं पड़ता कि कब सूरज निकला, कब अस्त हुआ। भारी पुस्तक कापियों का बस्ता आधे दिन लदा रहता है उसकी पीठ पर, मजदूर के बोरे की तरह।

दादा और भी बातें बता रहे हैं, लेकिन उसका ध्यान घड़ी की तरफ है। पढ़ने का समय हो गया है। वह खड़ा हो गया। मैं जाऊँ दादाजी।

—अरे हाँ, तुम्हारा तो समय हो गया। उन्होंने घड़ी पर निगाह डाली, फिर शलभ की ओर देखा। दुबला-पतला थका चेहरा; गम्भीर आँखों में बहुत कुछ मचल रहा है। कुछ सुनने को, कुछ हँसने को और कुछ किलकारियाँ मारने को। और...और भी...पर...

वह उनकी तरफ देखकर मुड़ा और चला गया। उन्हें लगा, आँखों में प्रश्न झलक रहे हैं। वे मासूम आँखें कुछ पूछ रही हैं, कुछ कह रही हैं—मुझे तो अभी भोलेपन में रहना था; लेकिन व्यस्तता भरी भीड़ में चार वर्ष से ही दुनिया के बाहर झांकना पड़ता है। यह सब अनिवार्य है। दस वर्ष के बालक को हर क्षेत्र के कोने-कोने का ज्ञान होना चाहिये। ढूँढो जरा, कहाँ है बचपन की तस्वीर। भोलापन तो यहीं खो गया। अनजान लोग बाहर कैसे निकलेंगे। छोटे-से ही हमें तनाव ने घेर लिया। उससे उबर सकेंगे कभी? बचपन का भोलापन नहीं मिलेगा न? इस भीड़-भाड़ में कहाँ खो गया हमारा बचपन? कहाँ डूब गया? क्या जवाब है इस प्रश्न का?

दादाजी ने गहरी सांस ली और शमा की ओर देखा जो पुस्तक उठा कर याद करने में जुटी हुई थी।

⊙

नाटिका

ईसुरी और गंगिया

—कृष्णप्रताप सिंह

⊙

[बुन्देलखण्ड का फाग सम्राट् ईसुरी, ग्राम धौर्रा के एक खपरैल घर में खटोली पर पड़ा हुआ "कौंख" रहा है। उसके पास कोई नहीं है। दिया-बत्ती की बेरा होने को हो गई है।]

ईसुरी : अँह, आह, अरेरेरे, हे भगवान, मेरा तो अंग-अंग टूटा जा रहा है। क्या करूँ, किसे बुलाऊँ, भला आज मेरे पास कौन आने की हिम्मत कर सकता है। मुझसे तो हिला भी नहीं जाता।

(साँकल बजाने की आवाज)

ईसुरी : कौन है?

गंगिया : मैं हूँ, कामदार साहब। (आवाज में घबड़ाहट है, बेचैनी भी।)

ईसुरी : गंगिया अन्दर आ जा, किवाड़ उड़के हुए हैं।

(गंगिया किवाड़ ठेलकर खोलती है फिर अन्दर आकर किवाड़ उड़काती हुई जल्दी से भीतर आती है।)

गंगिया : कहाँ हो, कुछ दिखाई नहीं देता। अँधेरा जो है।

ईसुरी : (कांखते हुए) गंगिया, वहीं आरे में डब्बी धरी है। गुरसी में आगी है, और चूल्हे के पास—कोने में सनोरा पड़े हैं, उनसे जला ले डब्बी को।

गंगिया : अभी जलाती हूँ—डब्बी, मालिक।

(गंगिया जल्दी से डब्बी जलाती है, और डब्बी हाथ में लिये हुए जल्दी से उनके पास आती है और उन्हें देखकर।)

गंगिया : देखो तो हत्यारों ने तुम्हारी का गत कर डारी ? ई कुड़मुता, कुजातन कुतिया "रुकमन" की नास हो, चुड़ैल को हुल्की पड़े, नास हो ससरी की।

ईसुरी : (बीच ही में) बस-बस रहने दे, काहे को कोसे जा रही है, उसे ?

गंगिया : क्यों न कोसूं चुड़ैल को ? गाँव भर तो कह रहा है कि चोरी उसी ने की है, और बेचारे कामदार को ठुकवा डाला।

ईसुरी : ठुकवाया तो जमींदार ने है।

गंगिया : झूठा दोष तो उसी हत्यारन ने लगाया है।

ईसुरी : अच्छा, अब, डब्बी को इस आरे में धर दे।

(पास के आरे में वह डब्बी धर कर फिर पास से उनका बदन देखती है।)

गंगिया : देखो तो—तुम्हारे बदन में तो लील ही लील दिखाई दे रहे हैं।

ईसुरी : हाँ गंगिया, सभी ने बुदरियों और घुट्टंनों से मुझे पीटा है। देखती नहीं पीठ पर बुदरियों के लम्बे-लम्बे निशान घुट्टंनों के हर जोड़ों पर नील।

गंगिया : मैं हरदी-चूना लगाये देती हूँ।

ईसुरी : अभी नहीं, इस पर अपना हाथ रख दे। कुछ आराम मिलेगा।

(गंगिया अपनी गदेली चोटों पर रखती है।)

ईसुरी : आह, कितनी ठंडक मिली। तेरे हाथ कितने ठंडे हैं, क्या पानी से धोकर आई है।

गंगिया : हाँ काम करने के बाद, कुआँ पर नहा रही थी, जभी लोगों से सुना बस भागती चली आई।

ईसुरी : धीरे, नहीं आया ?

गंगिया : बाहर गया है आज आना था, जब भी, और जहाँ भी, उसे खबर मिलेगी, दौड़ा चला आयेगा।

ईसुरी : उसे जमींदार का डर नहीं लगेगा ?

गंगिया : मैं तो पास के गाँव की हूँ। ठटेवरा वाले किसी से नहीं डरते। जब मैं नहीं डरी तो भला, वह तो आपके लिए सदा जान देने को तैयार रहता है।

ईसुरी : गंगिया, मुझसे तो करोंटा तक लेते नहीं बनता।

गंगिया : मैं लिवाये देती हूँ किस करोंटा लेटना है।

ईसुरी : अपनी तरफ को कर ले। (गंगिया उसे अपनी ओर करवट दिलाती है और—)

ईसुरी : अरे—आह-ओह, धीरे से मोड़।

गंगिया : धीरे से ही कर रही हूँ, जरा हिम्मत करो।

ईसुरी : गंगिया, पाटी पर बैठ जा, बातें करेंगे तो दुःख कम होगा।

(गंगिया पाटी पर बैठ जाती है और एक हाथ उनके ऊपर रख लेती है।)

ईसुरी : ठीक है गंगिया, इसी तरह हाथ से चोटों को सहलाती रह—आराम मिल रहा है बहुत आराम।

गंगिया : अच्छी बात है। चिमाजाव, मैं सहलाती हूँ।

⊙

(इसी समय मन्दिर में राधा-कृष्ण की आरती के घण्टे और शंख सुनाई पड़ते हैं। आरती का आभास होते ही ईसुरी ने लेटे-लेटे उन्हें प्रणाम किया।)

ईसुरी : गंगिया याद है तुझे, जब मैं पहली बार धौर्रा आकर कामदार हुआ था तो मंदिर में भोग चढ़ाने गया था। मैंने जैसे ही भोग चढ़ाकर पुजारी से चरणामृत लिया तो वे कहने लगे थे—"आप ही ईसुरी हैं ?" मैंने कहा था—"हाँ महाराज।"

गंगिया : फिर वे क्या बोले ?

ईसुरी : वे कहने लगे—"सुना है आप फाग अच्छी कहते हैं। आज आये हो तो कृष्ण भगवान पर एक फाग गाओ।

गंगिया : फिर आपने क्या कहा ?

ईसुरी : मैंने कहा—"मैं तो शक्ति का उपासक हूँ, उन्हीं पर फाग गा सकता हूँ। तो पुजारी बोले—"यही सही राधा की प्रशंसा, कृष्ण की ही प्रशंसा तो है। गाओ न—मैं सुनना चाहता हूँ।

गंगिया : फिर.........?

ईसुरी : फिर क्या मैंने अपने नेत्र बन्द किये और उनका ध्यान करके अलाप उठा :—

"लागै नख-सिख से तन नीको, कुंवर राधिका जी को।
केहर कदल सिरीफल दाड़िम, गति मराल गत सीको।
कंज खंज मृग मीन धनुष सर, उपमा हन भर फीको।
कुंभ कूप मुक चूक ब्याल विधि, विद्रुम बरनो कीको।
ईसुर-स्याम राधिका जू ने, गिरधर को मन झीको।"

गंगिया : हाँ याद आ गया, भाग्य से हम दोनों भी उसी समय मन्दिर के बाहर खड़े थे। आपकी अलाप सुनते ही उन्होंने ढोलक पर थाप मारी और मैं नाच पड़ी। कितना आनन्द आ रहा था मुझे, सभी आपकी फाग पर वाह-वाह कर रहे थे।

ईसुरी : कितनी भीड़ जमा हो गई थी—उस दिन वहाँ पर पुजारी ने प्रसन्न होकर सभी को खूब भोग बाँटा था।

गंगिया : आप यह क्यों भूलते है। जब मन्दिर से बाहर निकले थे तो मुझे देख फिर गा पड़े थे।

ईसुरी : अरे हाँ......।

"नग-नग कैसो बनो बंदवारो, रजऊ कों डील दुहारो।
गोला जांघ मसाली अड़ियां, कवजन कोद निहारो।
ओले तीन पेट में परतीं, माफक की धुंदवारो।
गोरो बदन लाल धुतिया पै, लगै लिपटतन प्यारो।
ईसुर मनो भायसे आवें, गज घूमत मतवारो।"

गंगिया : मैं कैसी झूम-झूम कर नाची थी, सच कहती हूँ, इसके पहले मैं अपने को मोटू समझती थी, लेकिन आपकी फाग ने मुझे अभिमानी बना डाला था।

ईसुरी : तभी तो 'धीरे' कहने लगा था मालिक अब इसके रूप की प्रशंसा न करना वरना यह तो फिर मुझे हाथ न धरने देगी।

गंगिया : और—फिर सभी हँस पड़े थे, उसे गाँव वाले हँसोड़ा कहते हैं।

ईसुरी : गंगिया, धीरे, अभी तक नहीं आया, क्या बात है।

गंगिया : आता ही होगा। मैंने कहा नहीं, उसे खबर मिली कि हजार काम छोड़कर भागा चला आवेगा।

ईसुरी : हूँ—आह, अरेरेरे, गंगिया, मैं बचूँगा कि नहीं?

गंगिया : हे भगवान, ऐसे बुरे बोल मुंह से न निकारो। मरैं हमारे दुश्मन। हमने किसी का क्या बिगाड़ा है।

ईसुरी : मेरा एक-एक जोड़ टूटा जा रहा है, पल भर की भी चैन नहीं है।

गंगिया : अभी तो कहा है कि हरदी-चूना लगाये देती हूँ। आराम—मिलेगा।

ईसुरी : जैसी तेरी इच्छा, वहाँ तवका में चूना रखा है और चूले के पास में पिसी-पिसाई हरदी, एकडबुलिया में है।

गंगिया : अभी मिला के लगाती हूँ। (हरदी व चूना मिलाने लगती है।)

ईसुरी : गंगिया तुझे याद है, एक बार मैं तेरे गाँव गया था।

गंगिया : हाँ खूब याद आया, कैसी नाची थी मैं, दिल खोल कर।

ईसुरी : उस दिन तूने मुझे न जाने क्या-क्या बना दिया था। कहती थी—तुम तो औरतों के मन की बात जान लेते हो, क्या बंगाली विद्या आती है, या जादू-टोना?

गंगिया : क्या झूठ कहा था? गाओ न वह फाग।

ईसुरी : अच्छा सुन।

कड़तन मारी नैन तरवारें, रजौ ने अपने द्वारें।
आवत देख लये अकता से, ठाड़ी हती-उवारें।
दुवरी दसा देह की हो गई, धसत चलीं गई धारें।
जर-जर भयो करेजो मोरो, समरत नहीं समारें।
"ईसुर" इनको कोऊ इते ना, कीसें करें पुकारें।

गंगिया : "इनको कोऊ इते ना" तुमने कैसे जाना था, बताओ?

ईसुरी : यह तो ऊपर की बात थी, मैंने तो तेरे मन की बात तक बता दी थी, याद है?

गंगिया : हाय, मैं मर जाऊँ, उस दिन तो मुझे इतनी सरम आई थी कि मुँह दिखाते न बनता था।

ईसुरी : तैंने ही तो कहा था कि अच्छा बताओ, मैं क्या सोच रही हूँ।

गंगिया : (हँसते हुए) और तुमने बता दिया था। हटो न,—ऐसे दुःख में भी चुटकी लेना नहीं भूलते।

ईसुरी : सच गंगिया—पुरानी यादें दुःख दूर कर देती हैं।

गंगिया : तो जरूर सुनाओ, मैं सुनूंगी, और नाचूंगी भी।

ईसुरी : अभी मत नाच, धीरे को आ जाने दे। ढोलक कौन बजायेगा।

गंगिया : ठीक है—सुनाओ।

ईसुरी : जो है परदेसन को दोरो, मजे में कम्मर छोरो।
आगे और उड़ीसा नैयां, गांव दूर है दिन थोरो।
परदेसन की चाह बड़ी है, परदेसे पति-मोरो।
डेरा-डांडो धरोपोर में, अबै डरो घर-कोरो।
ईसुर नोनों लगो आयसे, भवो करेजो ओरो।

गंगिया : इस फाग को सुन मैं ठगी-सी रह गई थी।

ईसुरी : न जाने तू उस समय क्या सोच रही होगी, वह तो अच्छा हुआ भुवानी की कृपा से धीरे आता दिखाई दे गया, वरना—तू तो न जाने क्या करती ?

गंगिया : हटो—चुहलें करना तो तुम्हारा काम ही है।

ईसुरी : ले अब लगा दे 'हरदी-चूना' बना लिया की नहीं ?

गंगिया : बना लिया है। लगाये देती हूँ। (गंगिया उठकर चोटों पर हरदी-चूना लगाने लगती है।)

ईसुरी : अरे—जरा हल्के हाथ से लगा, तेरा हाथ जो भारी है।

गंगिया : इतना तो नाची तुम्हारी फागों पर कि रात-रात भर पैर नहीं रोका, लेकिन यह मुटापा न गया।

ईसुरी : अरे तेरे वदन में दम न होती, तो कौन नाच लेता मेरे फड़ों पर, तीन-तीन, चार-चार, दिन-रात फड़ चलते थे।

गंगिया : यह तो ठीक कहते हो, दूसरी छुकड़ियाँ, एक पहर नाच कर बैठ जाती थीं।

⊙

(ईसुरी दर्द से 'कांख' रहे हैं, और गंगिया उनकी चोटों पर हरदी-चूना लगा रही है। इसी समय किवाड़ भड़भड़ाते खुल गये। गंगिया चौंक पड़ी, 'धीरे' ईसुरी के पैरों से लिपट कर 'रोने लगा'।

ईसुरी : अरे धीरे—रोता क्यों है रे।

धीरे : (ईसुरी के शरीर को देखता है) गंगिया उठा तो लाठी। अभी जाकर जमींदार का खोपड़ा खोले देता हूँ।

ईसुरी : अरे धीरे, जरा हरईके बोल, कोई सुन लेगा तो आफत हो जायगी।

धीरे : मालिक, मैं किसी आफत-फाफत से नहीं डरता। देखो तो जिनकी कृपा से मेरी गरीबी जाती रही, उनके लिए मैं जान दे दूंगा। अभी जाता हूँ उन सब की खबर लूंगा। सभी के खोपड़े ढोलक की तरह न बजा दिये, तो मेरा नाम धीरे नहीं।

ईसुरी : धीरे तुझे मेरी सौगन्ध है। ऐसा न कर मेरे पास बैठ जा। देखता नहीं, गंगिया ने चोटों पर हरदी-चूना लगा दिया है। अब तो आराम लग रहा है।

धीरे : ठीक किया उसने, आप ही की कृपा से आज उसके पास तीस बीघा जमीन हो गई है। वरना बेचारी—कपड़ा रँगते-रँगते मरी जा रही थी। खाने को भी नहीं पूजता था। अब तो वह दस को और खिला सकती है।

ईसुरी : इसमें किसी की क्या धराई, वह नाचती ही ऐसी है, कि लोग उसकी छमा-छम पर झूम उठते हैं।

धीरे : और अपनी जेबें खाली कर देते हैं।

गंगिया : तुम चुप रहो।

धीरे : क्यों चुप रहूँ, क्या मेरी ढोलक की थाप कुछ नहीं करती ?

गंगिया : अरे थाप का घमंड क्यों करता है ? तेरी थाप और मेरा नाच—सब मालिक की फाग पर ही जमता है।

ईसुरी : नहीं गंगिया, तेरी घुंघरू और धीरे की थाप, मेरी फागों को चार चाँद लगा देते हैं।

धीरे : आपने तो मुझे बातों में उलझा लिया, मुझे हुक्म करो, समरों का मूंड़ ध्राट लाऊँ।

ईसुरी : छोड़—इन बातों को ।

धीरे : क्यों ?

ईसुरी : वे मेरे मालिक हैं ।

धीरे : तो क्या उन्हें ऐसा करना चाहिए ?

ईसुरी : करना तो नहीं चाहिए, लेकिन बड़ों के कान होते हैं, आँखें नहीं ।

धीरे : ठीक कहते हो मालिक ।

ईसुरी : धीरे, मेरे काँधा दबा दे, दुख रहे हैं ।

धीरे : अभी लो मालिक । (कहता हुआ दबाने लगता है । और दबाते हुए) अरे मालिक आपको तो ज्वर है । वदन गरम है ।

ईसुरी : रहने दे धीरे—हाँ ये बता, तुझे वह दिन याद है जब तू गंगिया को लेकर मेला में गुदना गुदवाने गया था और गंगिया मुझसे पूछने लगी थी—क्या गुदवाऊँ ? मैंने कहा था 'गाकर बताऊँ' ।

धीरे : इसने कहा था—तब तो मजा आ जावेगा ।

गंगिया : और तुमने कहा था ढोलक की थाप से मेला को गुंजा दूँगा ।

ईसुरी : सचमुच उस दिन गंगिया कितनी मस्त होकर नाची थी । मेरे एक-एक बोल को अपने हाव-भाव से साकार कर दिया था ।

गंगिया : सुना दो न, वह फाग ।

ईसुरी : "गुदना गोदोरी गुदनारी, सबरी देह हमारी ।
गालन पै गोविन्द गोद दो, गरैं धरौ गिरधारी ।
माथे पै मदसूदन गोदो, माँग में कृष्ण मुरारी ।
बैंयन में वनमाली गोदो, कर में कुंज बिहारी ।
ईसुर करहा धरौ कदैया, मुखन में मन हारी ।

धीरे : अहा क्या याद दिलाई, मेला के सभी लोगों ने मालिक को घेर लिया था, कह रहे थे अभी और सुनाने की कृपा करो ।

ईसुरी : अरे धीरे—तैंने व गंगिया ने इसी एक फाग में एक पहर बिता लिया था । न तो इसके पैर रुकते थे, और न तेरे ढोलक की थाप ।

धीरे : फिर आप ही ने तो उन सभी को समझाया था कि मैं जमींदार धौर्रा का कामदार हूँ । यहाँ पर तो धोखे से फाग गा दी है । जमींदार साहब से जाकर विनती करो, एक रात उन्हीं के दरवाजे पर फाग हो जाय ।

गंगिया : तभी मैंने उन सब से कहा था "वहाँ सभी आना भूलना नहीं ।"

ईसुरी : हरे राम, ये चोटें तो प्रान लिये ले रही हैं । धीरे—जरा माथा दाब दे ।

धीरे : अभी लो मालिक, (कहता हुआ माथा दाबने लगता है ।) मालिक, माथा तो आगी की तरह गरम है ।

ईसुरी : रहने दे, धीरे । दबाता जा तू तो ।

गंगिया : कामदार साहब, चोटों को आग से सेंक दूँ ।

ईसुरी : नहीं गंगिया, सेंकने से और जलन होगी ।

गंगिया : जलन नहीं होगी, मैं कुन-कुना सेंक करूँगी ।

ईसुरी : अच्छी बात है, तो कर दे कुन-कुना सेंक ।
(गंगिया गुरसी पास लाकर कपड़े से चोटों को सेंकने लगती है)

ईसुरी : आहा, बड़ा चैन मिला । खुश रह गंगिया ।

धीरे : (बीच ही में) मालिक......।

ईसुरी : हाँ धीरे, याद है तुझे ? जमींदार ने आस-पास के सभी गाँवों में मुनादी करा दी थी कि आज व्यारी की बेरा से फागें होंगी, सभी लोग बखरी के मैदान में आ जावें ।

धीरे : हाँ मालिक, कितनी भीड़ थी उस दिन । ऐसा लग रहा था मानो कोई मेला हो ।

गंगिया : मैं भी उस दिन खूब सज-धज कर आई थी ।

धीरे : और डेढ़ सेर की रोटी चट करके ।

गंगिया : अपनी नहीं कहते—दो सेर की रोटी और पूरी दाल की हँड़िया पोंछ डाली थी ।

धीरे : रहने दे, इतना न खाऊँ, तो रात-रात भर जमकर ढोलक कैसे बजती ।

ईसुरी : क्यों गंगिया जैसे ही मैं आया था तूने क्या पूछा था मुझसे ?

गंगिया : मैंने पूछा था, "आज मैं कैसी लगती हूँ ।"

ईसुरी : और मैंने तेरे ही प्रश्न के उत्तर में फाग शुरू की थी :—

"ले गई प्रान पराये हरकें, माँग में सेंदुर भरकें ।
तीके तरै टिपिकिया कारी, टिंकुली तरें उतरकें ।
तीके तरै तिलक केसर की, दीनों सुधर सुधर कें ।
तीके तरै सीक सुरमा की, रेगई मोह पकर कें ।
बड़ी बेर लो इकटक ईसुर, रह गये तुम्हें नजर कें ।"

धीरे : मालिक इसी फाग ने तो एक पहर ले लिया था ।

गंगिया : पूरी रात में कुल तीन फागें तो गव ही पाई थीं ।

ईसुरी : मैं क्या करता, तू व धीरे बार-बार एक ही पंती को दुहराते, और तू अपने हाव-भाव से, और धीरे अपनी थापों से लोगों का मन मोह रहे थे ।

गंगिया : इसके बाद की फाग ने तो, रात के तीन बजा दिये थे ।

ईसुरी : हाँ गंगिया, उसे भी सुन ले ।

"नैना पिसतौलें सी भरकें, मारन चहत समर कें ।
दारू लाल, दरस की गोली, गज कर देत नजर कें ।
देत लगाय सेन की सूरन, पल की टोपी धर कें ।
बड़े-बड़े रनधीर सिपाही, बैठ रहे लर लर कें ।
ईसुर-फैर होत-फुरती से कौऊ, कहाँ लो वरकें ।"

गंगिया : जमींदार साहब तो इस फाग पर मस्त हो गये थे । और बार-बार आपकी पीठ ठोंक रहे थे ।

ईसुरी : हाँ गंगिया, तीसरी व उस रात की आखिरी फाग ने गाँव वालों को प्रसन्न कर दिया था । सभी एक-दूसरे की ओर देख कर आपस में चुटकी लेते थे ।

धीरे : मालिक, उस दिन मैंने कैसी कलाबाजी दिखाई थी ।

ईसुरी : धीरे, तुम कुछ न कहो, तेरे बराबर तो ढोलक बजाने वाला असफेर में नहीं है ।

गंगिया : और मेरा नाच ?

ईसुरी : तेरा नाच और तेरा रूप ही तो समा बाँध देता है । तीसरी फाग भी तेरे रूप पर ही थी ।

गंगिया : रहने दो कामदार साहब ।

धीरे : क्यों सरमा गई, मालिक हो जावे वह फाग भी ।

ईसुरी : सुनो,

जुबना चोपर कैसी गोहैं, छैल करता है चोटे ।
कईयक छैल तड़प कें रै गये, कई एक भू में लोटे ।
मारत सेन येन नैनन की, कर घूघट की ओटें ।
ईसुर बलम छोड़ के घर को, मुलकन मुलक अगोटे ।

धीरे : हाँ देख ले, क्या बात कही थी, तेरे लिये ।

गंगिया : खबड़दार, जो मेरे पर लाञ्छन लगाया ।

ईसुरी : अरे यह तो फाग है ऐसा न गाता तो लोगों को मजा न आता ।

धीरे : पते की बात कही मालिक, जभी तो सूरज निकलने पर सब घर गये थे ।

⊙

ईसुरी : [काँखते हुए] गंगिया अब मेरा दिल घबड़ा रहा है । क्या करूँ ? ऐसा लगता है, यह गाँव अभी छोड़ दूं । दोहरी मार पड़ी है, मुझ पर सरीर और सम्मान की ।

गंगिया : कहते तो आप ठीक हैं । इन गाँव वालों को हुलकी आवे ।

ईसुरी : छी-छी गाँव-वालों को क्यों कोसती है ?

धीरे : उस हरामजादी "रुकमन" को कोस ।

ईसुरी : नहीं; नहीं, न उसे ही [कुछ रुककर] धीरे, तू मेरा कहना करेगा न ।

धीरे : मालिक इसमें कोई पूछने की बात है, हुकुम करो ।

ईसुरी : गंगिया, तूने व धीरे ने एक बार मुझसे कहा था—अब यहाँ से मत जाना, कैसे चैन के दिन बीत रहे हैं, और मैंने तुम दोनों से कहा था कि यह संसारी है कब क्या हो जाए, कौन जाने ?

धीरे : मालिक ने एक फाग भी गाई थी इसी पर ।

ईसुरी : हाँ, लेकिन उस फाग पर न तूने दिल खोलकर ढोलक बजाई थी और न इसने दिल खोलकर नाचा था ।

गंगिया : क्या करती वह फाग ही ऐसी थी।

ईसुरी : तो अब फिर सुन ले उस फाग को क्योंकि अब उसका समय आ गया है।

गंगिया व
धीरे एक साथ : कैसा समय ?

"इक दिन मन पछते है, बेई भले ते केहै।
इते बने है जो दिन जो लो, दाना-पानी रे है।
छूट जाए सतसंग एक दिन, जाने को कां जैहे।
ऐसो काम रहत है जग में, मन की मन में रे है।
देख लेवो देखे खां ईसुर, दिन अरु रात ललेहै।"

[इस फाग को सुनकर गंगिया व धीरे थोड़ी देर तक दुःखी-से हो कर शांत बैठे रहे]

ईसुरी : तुम दोनों चुप क्यों हो ? कुछ बोलो न।

गंगिया : (आँखें पोंछती हुई) कामदार साहब।

धीरे : (भरे गले से) मालिक......।

ईसुरी : धीरे, अब तुझे एक काम करना है। अभी आधी रात हुई है। कहीं से सवारी का प्रबन्ध कर और मुझे मेरे गाँव "बगौरा" छोड़ आ।

धीरे : मालिक, ऐसा क्यों ?

ईसुरी : अपमान की चोट बहुत बड़ी होती है, अब मैं मुंह दिखाने लायक नहीं रहा।

गंगिया : गाँव के लोग तो जमींदार को धिक्कार रहे हैं। कामदार साहब।

ईसुरी : तू ठीक कहती है, लेकिन अब मैं उनकी नौकरी नहीं करूँगा।

धीरे : मालिक मेरे गाँव चलो, सिर आँखों पर रखूंगा।

ईसुरी : जानता हूँ, तुम दोनों मुझे बड़ा आदर देते हो लेकिन धीरे जरा सोचो, इतने बड़े जमींदार साहब की कामदारी करने के बाद क्या किसी छोटे जमींदार की नौकरी अच्छी लगेगी ?

धीरे : जो तो पते की बात कही मालिक ने।

गंगिया : (धीरे की ओर देखकर) कर सकोगे इतनी जल्दी जाने का इंतजाम?

धीरे : अरे--क्यों नहीं, अभी गाँव जाकर वह बैलों की जोड़ गड्डी में जोत कर लाता हूँ कि हाँ, हवा से बातें करेंगे।

ईसुरी : धीरे, तो जल्दी जा, मैं इस गाँव में सुबह किसी को मुंह दिखाना नहीं चाहता।

धीरे : अभी जाता हूँ, मालिक (कहता हुआ दरवाजे के बाहर निकल जाता है। किवाड़ों के खुलने और बन्द होने की आवज होती है।)

⊙

(ईसुरी दर्द के कारण कांखने लगते हैं, और गंगिया उनके गुलों पर कपड़े से कुनकुना सेंक करने लगती है।)

गंगिया : (हरई) पूछती है कैसो गये... ..?

ईसुरी : नहीं, नींद कहाँ है, इस समय, गंगिया तू भी मुझे बगौरा तक भेजने चलेगी न......?

गंगिया : क्यों न चलूंगी, बहुत दिनों से मायके नहीं गई हूँ, वहाँ भी हो लूंगी और सभी से मिल लूंगी।

ईसुरी : हाँ, बगौरा के पास ही तो तेरा भी मायका है। वहाँ अब तेरा कौन है, गंगिया ?

गंगिया : माँ-बाप और एक बहिन।

ईसुरी : तेरे कोई भाई नहीं है।

गंगिया : नहीं कामदार साहब।

ईसुरी : तेरे माँ-बाप और बहिन का क्या नाम है ?

गंगिया : माँ-बाप का नाम नहीं मालूम।

ईसुरी : हाँ, हम लोग बड़ों का नाम नहीं लेते, इससे उनके नाम भी याद नहीं रहते हैं। लेकिन बहिन का नाम भी नहीं मालूम क्या ?

गंगिया : मेरी बहिन का नाम सुन्दरिया है।

ईसुरी : (चौंक कर) क्या कहा, सुन्दरिया ?

गंगिया : हाँ, सुन्दरिया, क्यों क्या हुआ ?

ईसुरी : (एक-लम्बी सांस लेते हुए) कुछ नहीं, क्या वह भी तेरी तरह नाचती है ?

गंगिया : मुझसे कहीं अच्छा नाचती है, वह पास ही में रामनगर ब्याही है ।

ईसुरी : तू कब से मायके नहीं गई ?

गंगिया : जब से ठटेवरा आई थी ।

ईसुरी : चल अच्छा हुआ, दोनों वहाँ पर मिल लेना ।

⊙

(इसी समय, गाड़ी में जुते हुए बैलों की जोड़ी घनघनाती हुई दरवाजे पर रुकी । धीरे अन्दर आया ।)

धीरे : मालिक चलबो होवे ।

ईसुरी : तुम दोनों मुझे सहारा दो जब गाड़ी तक चल सकूँगा ।

(दोनों ईसुरी की बाँह पकड़कर गाड़ी तक ले जाते हैं और चलते समय ईसुरी काँखते जाते हैं ।)

गंगिया : (धीरे से) हाँको बैल, और हाँ ये ढोलक क्यों साथ में लाद ले आये ?

धीरे : ढोलक ले आया, तो कौन तेरे सिर पर लाद रहा हूँ ।

(कहता हुआ गाड़ी पर बैठ जाता है, बैलों की पखइयाँ समारता है । और गाड़ी हाँक देता है, जैसे ही गाँव के बाहर गाड़ी मन्दिर के सामने आती है, ईसुरी के कानों में सुबह की आरती की घंटी की ध्वनि सुनाई पड़ती है ।)

ईसुरी : धीरे, थोड़ी देर को मन्दिर के सामने गाड़ी ढील देना ।

धीरे : जरूर मालिक, दर्शन कर लो । (कहता हुआ गाड़ी रोकता है और बैलों को ढील देता है और उन्हें ज्वारी से बाँध देता है ।)

ईसुरी : मन्दिर तक तो न जा सकूंगा, यहीं से अन्तिम दर्शन किये लेता हूँ—न जाने अपने गाँव—बगौरा पहुँच पाता हूँ कि नहीं···।

गंगिया : फिर मुँह से असगुन निकाली तुमने ।

ईसुरी : गंगिया, मुझे खुटला से टिका दे । (वह उन्हें खुटला से टिका देती है ।)

: गंगिया अब नीचे उतर, धीरे, ढोलक को कमर में बाँध, आज मैं ईश्वर से व तुम दोनों से विनती कर रहा हूँ ।

गंगिया : क्या मुझे नाचना है ?

ईसुरी : हाँ, घुंघरू बाँध ।

धीरे : क्या मुझे ढोलक बजाना है ?

ईसुरी : हाँ, हाँ······।

गंगिया व धीरे : ······क्यों······?

ईसुरी : यह मेरी आज्ञा है, और तुम दोनों मन्दिर के सामने दिल खोलकर अपनी कला दिखा दो, फिर बार-बार मौका नहीं मिलेगा । और हाँ, यह भी ध्यान रखना कि अगर मैं बीच गैल में ही 'चल बसा' तो मेरी फाग के अन्तिम शब्दों को पूरा करना, ये तुम दोनों की जिम्मेवारी होगी ।

धीरे : जो आज्ञा ! गंगिया उतर नीचे, और आज हम दोनों अपनी कला से राधा-कृष्ण को प्रसन्न कर वरदान माँगें कि हम अपने मालिक को सकुशल बगौरा पहुँचा दें ।

ईसुरी : (फाग अलाप उठे, गंगिया ठुमक पड़ी और धीरे ने ढोलक पर थाप दे मारी ।)

"यारो इतनों जस लै लीजो, चिता अन्त न कीजो ।
चलत सिरम कौ बहत पसीना, भसम को अंतस मींजो ।
निगतन खुदें चेटका लातन, उन लातन मन रीजो ।
वे सुसतीं ना होय रात-दिन, जिनके ऊपर सींजो ।
गंगा जू लौं मरें ईसुरी, दाग बगौरा···दीजो ।"

(ईसुरी की फाग जैसे ही समाप्त हुई कि धीरे ने अपनी ढोलक को अन्तिम थाप इतने जोर से दी कि उसके दोनों पंजे ढोलक में घुस गये और उधर गंगिया ने अपनी घुंघरू उतार कर मन्दिर के सामने दे मारी ।)

धीरे : (कै ढोलक की आवाज होती है) "फक" ।

गंगिया : (कै घुंघरुओं से आवाज आती है) "छुन्न" ।

धीरे : गंगिया जल्दी से गाड़ी पर बैठ।

गंगिया : तुम भी जल्दी से बैल जोतो और हाँको बैल।

(धीरे ने जल्दी से बैल नहे, और उन्हें हाँक दिया, गाड़ी अपने पीछे धूल उड़ाती हुई चल पड़ी, मानो वह "धौरा" को उसके दुष्कर्म के लिये धूल से लाद देगी।)

ईसुरी : बाह गंगिया सिर गोद में रख ले। (गंगिया ने ईसुरी का सिर गोद में रख लिया, वे लेट गये, गाड़ी घनघनाती हुई चली गयी।)

⊙

शब्द ब्रह्म

सरोज श्रीवास्तव 'नलिन'

⊙

कविता !
ओ कविता !
तुमने हमको कितना काता
छन्दों की धुनकी में
उलझन के तार
श्रम गया बेकार।

कविता !
ओ कविता !
तुमने हमको कितना जोता
सपनों के राजकुँवर
हवा में सवार
छू न सके हार गये
व्योम का विस्तार !

कविता !
ओ कविता !
तुमने हमको कितना खींचा
अनुभूतियाँ कुपोषित
कुण्ठित अभिव्यक्ति हुई
दुनये गई अर्थ देह
भार हो गये सभी
शब्द, अर्थ, अलंकार।

कविता !
ओ कविता !
शब्द अब तड़प उठा
पुकार तो सुनो
असमंजस को छोड़
विधा अर्थमय चुनो
अहं को समेट कर
अनुभूति में लपेट कर
रसों को निचोड़ कर
शब्द को डुबो दो
अभिव्यक्ति का पंछी
निर्बन्ध तुम उड़ा दो
फिर देखो उसकी अनुगूँज
ब्रह्माण्ड को झकझोर कर
जगा देने में समर्थ
गूँजेगी बार-बार
यहाँ से वहाँ तक
क्षितिज के आर-पार ।

कविता !
ओ कविता !
निश्चय ही श्रेष्ठ हो तुम
मैं अकिंचन,
किन्तु मत भूलो कि—
समग्र सृष्टि के
नियन्ता को भी
अपने समरूप
कर लेने की सामर्थ्य
जिसमें विद्यमान है
वह
मात्र एक शब्द ही तो है
एक अक्षर आकार

ॐ कार, ॐ कार
शब्द ब्रह्म निर्विकार !

कविता !
ओ कविता !
असहनीय पीड़ा है
सुनो तो कहूँ
अपने अर्थ को विकृत
किये जाने का अत्याचार
कहाँ तक सहूँ
समस्त विश्व के लिये
अभिव्यक्ति का माध्यम होकर भी
मैं अपने लिये मूक हूँ
असहाय और लाचार ।

कविता !
ओ कविता !
पहले सामूहिक शब्द
लोगों के हृदय में जगाता था
एक जोश एक उत्साह
शुद्ध, सात्विक सहयोग का ।
किन्तु अब धीरे-धीरे
सामूहिक शब्द ध्वनित करता है
हिंसा और बलात्कार ।

कविता !
ओ कविता !
कितनी गहन संवेदनाओं को झेलकर
रचता है कोई कृति
एक कलाकार
लेकिन अब तो
नगर के नगर
संवेदनशील हो जाते हैं

साम्प्रदायिक दंगा करने वाले लोग
संवेदनशील कहलाते हैं
मुझे भय लगता है कि
नयी पीढ़ी यदि
ऐसी ही भाषा पढ़ती रही
तो—
वह दिन दूर नहीं है
जब दंगाई का अर्थ होगा
बुद्धिजीवी साहित्यकार।

कविता !
ओ कविता !
तुमने ही अनादि काल से
मेरे स्वरूप को सँभाला है
अब भी करो मुझ पर
ऐसा ही उपकार
विकृतियों की साजिश से
बचा लो मुझे
मेरे स्वरूप को दो
पुनः उचित व्यवहार
अनन्त काल तक मानता रहूँगा
तुम्हारा आभार !

मध्यदेशीय लोक संस्कृति विशेषांक

⊙ मामूली पत्रिका नहीं

आपके सम्पादन में मामुलिया बहुत उपयोगी सामग्री प्रकाशित कर रही है। यह मामूली पत्रिका नहीं, भविष्य में इसका सही मूल्य आँका जा सकेगा।

-प्रोफेसर कृष्णदत्त वाजपेयी, सागर, म० प्र०

⊙ नयी दिशा मिलेगी

लेखों का स्तर बहुत अच्छा है और इस प्रकाशन से लोक साहित्य और संस्कृति के अध्ययन को नयी दिशा मिलेगी।

—प्रोफेसर श्यामाचरण दुबे, अध्यक्ष, म० प्र० उच्च शिक्षा अनुदान आयोग, भोपाल

⊙ परिश्रम से निकालते हैं

आप पत्रिका परिश्रम से निकालते हैं, यह तो स्पष्ट है। उसकी सफलता के लिए मेरी शुभकामना है।

—डॉ० रामविलास शर्मा, नई दिल्ली

⊙ पुस्तकाकार भी आती

सराहनीय श्रम किया है और महत्त्वपूर्ण सामग्री दी है। अच्छा होता कि ये चीजें पुस्तकाकार भी आतीं, वृहत्तर पाठक-सामज तक पहुँचतीं।

—डॉ० प्रेमशंकर, सागर विश्वविद्यालय, सागर

⊙ श्लाघ्य प्रयास

बड़ी मेहनत एवं सूझ-बूझ से सक्षम हस्ताक्षरों की गरिमा के साथ तैयार किया गया है। मात्र सैद्धान्तिक विवेचन ही नहीं, लोक संस्कृति के प्रायोगिक पक्ष को उजागर करते हुए लोक-चित्र, लोककवि-सम्मेलन आदि का संयोजन एवं उसकी रपट पेश कर आपने अपना प्रयास श्लाघ्य बना दिया है।

—डॉ० बी० डी० मिश्र, सागर विश्वविद्यालय, सागर

⊙ महत्वपूर्ण और कीर्तिकारी

लोक संस्कृति की इनी-गिनी समर्थ पत्रिकाओं में मामुलिया बड़ी महत्वपूर्ण और कीर्तिकारी पत्रिका है। इसकी सामग्री विचारोत्तेजक और अनुसंधान को प्रेरित करने वाली होती है। अब लोक संस्कृति को नितान्त पारम्परिक बना कर भी नहीं जिया जा सकता। उसका नवनवोन्मेष जरूरी है। आप इसमें प्राणपण से जुड़े हुए हैं, कइयों के लिए प्रेरक बने हुए हैं।

—डॉ० महेन्द्र भानावत, निदेशक, भारतीय लोक कला-मण्डल, उदयपुर (राजस्थान)

⊙ विशिष्ट प्रकार का सम्पादन

अपरिचय की स्थिति होते हुए भी आपको पत्र लिखा जा रहा है। वस्तुतः आपके द्वारा सम्पादित पत्रिका 'मामुलिया' के तीन-चार अंकों को हाल में ही देखने से आपका पर्याप्त परिचय प्राप्त हो गया।...आंचलिक भाषा के सम्बन्ध में एक स्तरीय पत्रिका मामुलिया है। मैं स्वयं ब्रजभाषा-भाषी हूँ, परन्तु बुन्देलखण्ड के विषय में प्रारम्भ से ही रुचि रखता रहा हूँ।...'मामुलिया' के विशिष्ट प्रकार के सम्पादन के लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

—भरतचंद्र चतुर्वेदी, उपसचिव, राजस्व, भोपाल

⊙ संस्कृति-विकास का पुण्य कार्य

मामुलिया और बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी के द्वारा संस्कृति-विकास के जिस पुण्य कार्य में आप लगे हैं, उसके लिए हिन्दी साहित्य आपका चिर ऋणी रहेगा।

—राजाराम त्रिपाठी, अध्यक्ष, जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पन्ना

⊙ सबई लेख ऊँचे

सबरे लेख बहुतई उम्दा लगे। डा० बंसीधर नें 'मालवी लोक संस्कृति' में एक जगा लिखो है—"दूर-दराज के लोगों को यही तो आस्थाएँ हैं जो जिन्दा रखे हुए हैं। हम वैज्ञानिक दृष्टि सम्पन्न होने का दावा करने वाले लोग भले ही इन्हें अंधविश्वास और अज्ञान कहकर गाँव के लोगों से इन्हें त्यागने को कहें या इनकी उपेक्षा करें, परन्तु जब तक उन्हें जिन्दा रहने के लिए, स्वस्थ रहने के लिए उपयुक्त सुविधाएँ नहीं पहुँचाते, तब तक हमें उक्त व्यवहार करने का कोई अधिकार नहीं है। हम ऐसा करके ग्राम-जीवन की जीवनीशक्ति पर चोट करते हैं, उन्हें जीवित रहने की इच्छा से विमुख करने की हिंसक भूमिका का निर्वाह करते हैं।" डाक्टर साहब ने कैसी उम्दा समाज और शासन खों दुलस्ती मारी। सम्पादक जू, एक बात और करने है कै सबई लेख ऊँचे हैं, कछू हम ऐसन के लानें छोट लेख सोई अब चहियत अंक में। अपुन तो जानत हो कै सबई पढ़बे वारे एक से नईं होत।

—कुँवर के० पी० सिंह, छतरपुर

⊙ कल्पवृक्ष-सी जमी

निज संस्कृति-साहित्य-कला को, अपने अंक लिया।
बुन्देलखण्ड की परम्परा को, सच्चा रूप दिया।
अंक-अंक बाँचे पुराण-सा, भू-पर गाये गौरव-गाथा।
अर्घ्य उतारूँ, करूँ आरती, तेरी मामुलिया॥

अभिधा-व्यंग्य-लक्षणा झलके, भाव-भंगिमा की दुलिया है।
धूप-दीप-नैवेद्य सँजोये, पुष्पों की मचला-चुलिया है।
बुन्देली जीवन-दर्शन की, यह है सुघर दर्शिका प्यारी।
मन बरबस कह उठता एकदम, ऐसी पावन मामुलिया है॥

जन-मन आंदोलित होता है, मन में जहाँ रमी।
बुन्देली इस वसुन्धरा पर कल्पवृक्ष-सी जमी।
पोषित होंगे मूल्य नये नित, फूलें और फलें।
सृजन व्यस्त है रचनाधर्मी कवि-सी अकादमी॥

—केशव रावत, अध्यक्ष, सरस्वती साहित्य संघ खिमलासा

● सांस्कृतिक एकता का नया सूत्र

मामुलिया एक प्रतिष्ठित पत्रिका है, उसका मध्यदेशीय लोकसंस्कृति विशेषांक देखकर अपार हर्ष की अनुभूति हुई और ऐसा प्रतीत हुआ कि अब विद्वज्जनों की दृष्टि लोकसंस्कृति की सही उपादेयता पर टिकी हुई है। विभिन्न विद्वानों के कुल आठ लेखों के पूर्व विद्वान् सम्पादक डॉ० नर्मदाप्रसाद गुप्त ने आधायिका प्रस्तुत की है, जो उनकी सूक्ष्म दृष्टि और मौलिक सूझ की परिचायक है और जिसमें उन्होंने अवधी, ब्रज, बुन्देली, बघेली, मालवी आदि जनपदों की लोक-संस्कृति में समानता और एकता के अनेक सूत्रों के

द्वारा मध्यदेशीय लोक-संस्कृति की एक समानधर्मा इकाई खड़ी कर दी है । इससे सांस्कृतिक एकता का नया सूत्र प्रकट हुआ है ।

पहला लेख प्रख्यात विद्वान् डॉ० भगीरथ मिश्र का है, जो विशेषांक की गरिमा द्योतित करता है । उनकी यह मान्यता कि आज की अवधी संस्कृति मिली-जुली संस्कृति है, हर जनपद की संस्कृति पर लागू होती है । दूसरा लेख श्री रामनारायण अग्रवाल का है, जिसमें ब्रज की संस्कृति के विकासात्मक रूप की खोज सराहनीय है । तीसरे लेख-कन्नौजी लोकसंस्कृति में रमेश तिवारी ने कन्नौजी लोक साहित्य के स्वरूप और स्वभाव को भलीभाँति प्रस्तुत किया है । चौथे में डॉ० भगवतीप्रसाद शुक्ल ने बघेली लोकसंस्कृति के लोकमूल्यों का अच्छा विश्लेषण दिया है । पाँचवाँ बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति डॉ० नर्मदा प्रसाद गुप्त का है, जिसमें जनपद की लोकसंस्कृति का विकास ही नहीं, उसके लोक-विश्वास, खान-पान, वस्त्राभरण, रीति-रिवाज, लोक-साहित्य, लोककलाएँ आदि का ऐतिहासिक दृष्टि से भी अध्ययन किया गया है । छठें लेख में डॉ० बंसीधर की दृष्टि संस्कृति के व्यावहारिक स्वरूप पर अधिक रही है, जबकि सातवें में डॉ० विद्याबिन्दु सिंह ने लोक और संस्कृति पर सैद्धान्तिक विवेचन प्रस्तुत किया है । आठवाँ लेख डॉ० अरुण त्रिवेदी का है, जिसमें अवधी लोकसंस्कृति का विवेचन प्रभावात्मक ढंग से किया गया है ।

लेखों के अलावा समारोह की रपट, आवरण पृष्ठों पर बने लोकचित्र सब-कुछ लोकसंस्कृति का एक अनोखा माहौल खड़ा करते हैं । विशेषांक की छपाई-सफाई, साज-सज्जा आदि सभी नयनाभिराम हैं । अंक संग्रहणीय है ।

—डॉ० कमला सिंह, 165/9 आजद स्क्वायर, प्रयाग

⊙ संस्कृति के एकता-सूत्रों की तलाश करने की जोरदार पहल

'मामुलिया' पूरी दिलचस्पी से पढ़ी । मध्यदेशीय लोकसंस्कृति के एकता-सूत्रों की तलाश करने की यह जोरदार पहल है । इतिहास साक्षी है कि लोक-संस्कृति की महत्ता आदिकाल से अब तक बरकरार है । देश जब परतंत्र हो जाता है, तब भाषा भी परतंत्र हो जाती है, यहाँ तक कि रीति-रिवाज, संस्कार और मनुष्य के भाव भी परतंत्र हो जाते हैं । ऐसी स्थिति में देश की सभ्यता और संस्कृति खतरे में पड़ जाती है । तब इन विपत्ति के क्षणों में लोक-संस्कृति देश की भाषा और संस्कृति की रक्षा करती है । यह सही है कि सफेदपोशों के बल पर देश की भाषा और सांस्कृतिक एकता कभी नहीं बचती, अपितु चीथड़े पहनने वाले, कच्चे गेहूँ के रस की महक जीने वाले घमीले-

गुबरीले गाँवों में रहने वाले लोग, महुआ और पीपल खाने वाला लोकमानस देश की संस्कृति, भाषा और संस्कारों को बार-बार बचा लेते हैं ।

मेरी नानी के 'चन्दा से ऊजरे लिलार पै पुराने ताँबे से टका जैसो ईंगुर को टीका बीच की अँगुरिया जित्ती चौड़ी ईंगुर भरी माँग', 'एक चना दो देवल री माई साहुन आये' गाता कोयल-सा मधुर स्वर-यह सब भारतीय नारी का संस्कार था । भैया के आँगने मामुलिया को खेलनों—

लइयो लइयो तेउरइया के फूल ।
सजइयो मोरी मामुलिया ।

बेर की सूखी कँटीली डाल और काँटों में बिंधे लाल, गुलाबी, पीले, सफेद तेउरइया के फूल । **काँटों की चुभन पर फूलों के कोमल आवरण, कोमलता का बन्धन, मुझे लगा ऐसा ही मध्यदेश की लोकसंस्कृति का स्वरूप है और ऐसा ही प्रयास है** 'मामुलिया' । मध्यदेश की संस्कृति शौर्य, शृंगार और कर्मनिष्ठा के सूत्रों से जुड़ती है, संस्कार के धागों में लोकरंगी फूल पिरोती है । मध्यदेश ही क्या ? हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक भारत संस्कारों के एकता-सूत्र से जुड़ा है । डॉ० नर्मदाप्रसाद गुप्त ने 'मामुलिया' की भूमिका में लिखा है—'सभी जनपदों की संस्कृति में भय, आश्चर्य, प्रेम जैसे लोकभाव निहित हैं । इन समानताओं के साथ सभी जनपदों की लोकसंस्कृति में अधिकतर लोकाचार और रीति-रिवाज भी एक-से हैं ।' पुत्र-जन्म, विवाह और मृत्यु के कुछ ऐसे संस्कार हैं, जिन्हें हम भारतीय संस्कारों का मूल मानते हैं । आस्था, पूजा, प्रेम, विश्वास, अतिथिसेवा, प्रणाम ये पूरे देश की एकता के बिन्दु हैं ।

मध्यदेश की संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि आदिवासी संख्या-बहुल प्रदेश होने के कारण आर्य और द्रविड़ दोनों संस्कृतियों का मिश्रण यहाँ है । रेवांचल के सीधी-शहडोल जिलों से लेकर दक्षिण छत्तीसगढ़ का क्षेत्र अनार्य संस्कृति का रूप लेकर चलता है । बंगाल असम संस्कृति के रहस्यात्मक संकेत बघेलखण्ड और बुन्देलखण्ड को प्रभावित करते हुए झाबुआ बस्तर के आदिवासियों तक पहुँचते हैं । जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, बुन्देलखण्ड के घनश्यामदेव, दक्षिण बघेलखण्ड के लछिमन जती और छत्तीसगढ़ी आदिवासियों के घमसान देव इसी अनार्य संस्कृति के देवता हैं । रेवांचल का (रीवा, सतना, सीधी, शहडोल) क्षेत्र अपनी 'रिमहाई बोली' के साथ जनपदीय लोकसंस्कारों का मिला-जुला रूप है । रेवा > रीवा > रीमां से रिमहाई का स्वरूप स्पष्ट होता है । बघेल राजाओं की सत्ता ने 'रिमहाई' को बघेली नाम दिया और आज तक

यह क्षेत्र बघेलखण्ड तथा बघेली बोली के नाम से जाना जाता है। रीवा का उत्तरी क्षेत्र अवध के रामजन्मा संस्कारों और आर्य संस्कृति से जुड़ता है। सीधी में माड़ा की अद्‌भुत गुफाएँ तथा बाणभट्ट की कादम्बरी का पाठ करती सोन की तरंगें हैं। शहडोल के विराटनगर ने पाण्डवों को अभय और आश्रय दिया था। चित्रकूट ने बारह वर्षों तक राम की पीठ पर थपकियाँ देकर लोरियाँ सुनायीं। चित्रकूट रेवांचल का वह स्थल है, जहाँ सीता ने अत्रि-पत्नी सती अनसुइया से भारतीय नारी के आदर्श का पाठ पढ़ा था और अशोक वाटिका में रावण के समस्त कामुक बाणों को नष्ट कर दिया था। लगभग सात सौ सालों तक रियासती परम्परा ने इस क्षेत्र की चेतना को जड़ बनाने की कोशिश की। पतनशील पूंजीवादी सत्ता और सामन्तवादी व्यवस्था ने विकास की गति को रोका। जहाँ तक जादू-टोना, मन्त्र-तन्त्र का सवाल है शहडोल और सीधी जिले के भाग इनसे प्रभावित हैं और समूचे मध्यदेश की लोकसंस्कृति को देखें तो साफ है, कि वट-पीपल, नदी-कुआँ, सूर्य-चन्द्र का पूजन लोक-विश्वास और आस्था के अन्तर्गत आता है—मनुष्य और प्रकृति का यह शाश्वत सम्बन्ध बघेलखण्ड ही नहीं, समूचे भारत के लोक-विश्वासों का ताना-बाना है। विन्ध्याचल की लोकसंस्कृति चेतना की संस्कृति रही है। यह महज औपचारिकता में नहीं लिख रही हूँ, आज भी यह संस्कृति देश-विदेश को अपनी अक्षुण्ण कला में चुम्बकीय बनी हुई है। 'खजुराहो' जिन्दगी का विश्वविद्यालय है। हरदौल की खीर पारिवारिक धरती की निष्ठा है। छत्रसाल के घोड़ों की टापों के शौर्य में हीरा निकलता है। लोकसंस्कृति नदी, पहाड़, झरबेरी, मधूक और कटहल से भी बनती है और शौर्यभरे उदात्त चरित्रों से भी। मानो गूजरी की गाथा नारी-अस्मिता की कथा है।

कन्नौजी लोकसंस्कृति के सन्दर्भ में कहा गया है कि "मानव सभ्यता के विकास-क्रम में मानव के ज्ञान और कर्म का समन्वित नवनीत ही उसकी संस्कृति है। संस्कृति की सुरसरि जब पीछे मुड़कर देखती है, तब उसे अपने उत्स के रूप में सतत प्रवाही लोकसंस्कृति के दर्शन होते हैं।" यह सही है कि विकास के दौर में भी उत्स का मूल रूप विकास की अस्मिता है। प्रत्येक जनपद की स्थानीय सत्ता होते हुए भी उत्स की संस्कृति एक है।

आज भौतिकवादी व्यक्तिवादी चेतना के दौर में लोकसंस्कृति के वे सूत्र तलाश करना जिनसे समूची भारतीय एकता पहचानी जा सके, एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। मध्यदेश की लोकसंस्कृति पर आधारित 'मामुलिया' ने कई पहलू उजागर किये हैं और विस्मृति के गर्त में डूबती लोकसंस्कृति को प्रकाश में लाने का स्तुत्य कार्य किया है। डॉ० भगीरथ मिश्र जैसे विद्वानों के आलेखों से कुछ मिला भी है। डॉ० नर्मदाप्रसाद गुप्त को इसके लिए धन्यवाद देती हूँ, बधाई......।

—डॉ० विनोद तिवारी, 16 प्रेमचन्द मार्ग, पाण्डेन टोला
रीवा (म० प्र०)

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त स्मारिका

⊙ असाधारण

'मामुलिया' (गुप्त विशेषांक) असाधारण है, मामूली बिल्कुल नहीं। इसमें बहुत-सी ऐसी सामग्री है जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं। बहुत अच्छा संग्रह है। चित्र और अच्छे छपने चाहिए थे। यह मैथिली मान-ग्रन्थ (हस्तलिखित) कहां है? उसमें मेरा एक लेख था—'गुप्त जी की गर्विणी गोपा'। वह मुझे कभी बाद में मिला ही नहीं।

और स्मारिकाओं की तुलना में यह अधिक संग्रहणीय है।

—प्रभाकर माचवे, दिल्ली

⊙ उपयोगी

आपने अच्छी सामग्री संकलित की है। उनको (राष्ट्रकवि को) समझने के लिए यह विशेषांक उपयोगी प्रमाणित होगा।

—विष्णु प्रभाकर, दिल्ली

⊙ कीर्तिमान

सामग्री, मुद्रण, साज-सज्जा, सम्पादन आदि सभी दृष्टि से यह सर्वथा उपादेय एवं संग्रहणीय है। एक ही कमी इसमें दिखायी दी। चित्र यदि आर्ट पेपर पर छपे हुए होते, तो इसका रंग-रूप और भी निखर जाता। फिर भी यह उपादेय कीर्तिमान है।

—क्षेमचन्द्र सुमन, दिल्ली

⊙ दुर्लभ सामग्री

स्मारिका राष्ट्रकवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सर्वथा अनुकूल बन पड़ी है और आपने दुर्लभ सामग्री को समाविष्ट किया है। गुप्त-साहित्य के अध्येताओं के लिए आपकी स्मारिका एक अनिवार्य ग्रन्थ जैसा प्रतीत हो रही है।

—प्रो० कैलाशनाथ तिवारी, पूर्णिया

⊙ एक दस्तावेज

मामुलिया का राष्ट्रकवि अंक संग्रहणीय तो है ही, वक्त का एक दस्तावेज भी बन गया है जिसे पीढ़ियाँ सँजोकर रखेंगी।

—रामेन्द्र त्रिपाठी, आगरा

⊙ ठोस सामग्री

इस अंक में आपने ठोस सामग्री दी है। मुझे भी गुप्त जी के बारे में काफी-कुछ जानकारी मिली।

—केदारनाथ अग्रवाल, बाँदा

⊙ अलग लकीर

गुप्त जी पर हिन्दी पत्रिकाओं में जो भी सामग्री देखने में आई है, उनमें 'मामुलिया' का प्रयास सबसे हटकर है। वह बराबर एक अलग लकीर खींचने में लगातार सफलता प्राप्त करता जा रहा है। मामुलिया साधनों में भले मामूली हो, अपने व्यक्तित्व में मामूली नहीं।

—डॉ० रामशंकर द्विवेदी, उरई

⊙ जेहि बस होत सुजान

इस स्मारिका में श्री गुप्त जी के व्यक्तित्व के अनछुए प्रसंगों, कोनों (दृष्टिकोणों) एवं मोड़ों पर अप्रत्याशित सामग्री उपलब्ध हुई, विशेषतया उनके परिजनों की अभिव्यक्तियाँ और श्री गुप्त जी की वह चोट करने वाली अचूक तीरंदाजी भी देखने को मिली जिसके एक मामूली-से दृष्टिपात से 'सुजान' प्रभावित ही नहीं होते, अपितु वशीभूत हो जाते हैं—

'अनियारे दीरघ द्रगनि, किती न जुवति जहान।
वा चितवन औरै कछू, जिहि बस होत सुजान॥'

— श्रीधर दीक्षित, ग्वालियर

⊙ विचार-प्रेरक

मामुलिया की स्मारिका आद्योपांत पढ़ गया हूँ। अब तक मैथिलीशरण जी की जन्मशती के उपलक्ष्य में जितने प्रकाशन हुए हैं, उनमें आपका यह प्रकाशन अपना विशेष स्थान रखता है। वस्तुतः इतनी मूल्यवान् सामग्री मुझे किसी में भी नहीं दिखायी दी। दद्दा के व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में बड़े प्रभावशाली ढंग से प्रकाश डाला गया है। सारे खण्डों की सामग्री

सुपाठ्य, ज्ञानवर्धक तथा विचार प्रेरक है । मुझे पूरा विश्वास है कि स्मारिका को जो भी पढ़ेंगे, लाभान्वित हुए बिना नहीं रहेंगे ।

—यशपाल जैन, नई दिल्ली

⊙ लोकसंस्कृति की सेवा

'मामुलिया' नामक लोक साहित्य सम्बन्धी इतनी शोध-परक पत्रिका निकालकर आप भारतीय लोक-संस्कृति की जो अमूल्य सेवा कर रहे हैं, इसके लिए पत्रिका की जितनी भी प्रशंसा की जाय सब थोड़ी है ।

स्मारिका में गुप्त जी के सम्बन्ध में जितनी अमूल्य सामग्री तथा हृदय-हारी संस्मरण प्रस्तुत किये गये हैं, वे अन्यत्र मिलना अत्यन्त कठिन हैं ।

— डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, वाराणसी

⊙ ऐसा सुन्दर संकलन नहीं देखा

'मामुलिया' हिन्दी साहित्य के झरोखे में रखने योग्य है । ऐसा सुन्दर लेखन-संकलन पूज्य दद्दा पर नहीं देखा । एक-एक अंश सुविचारित, सुलिखित है ।

—डॉ० राय आनन्द कृष्ण, वाराणसी

⊙ स्तरीय विशेषांक

राष्ट्रकवि विशेषांक स्तरीय तो है ही, बहुत मूल्यवान् और उपयोगी भी है ।

—डॉ० अरुण त्रिवेदी, सीतापुर

⊙ जिज्ञासुओं, चिन्तकों के लिए

श्री गुप्त जी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को उजागर करने वाला यह सुन्दर अंक जिज्ञासुओं, सुधी चिन्तकों सभी के लिए उपादेय है ।

—प्रो० अयोध्याप्रसाद द्विवेदी, रीवा

⊙ अद्भुत

इसमें अद्भुत सामग्री है गुप्त जी के सम्बन्ध में । कृपया म० प्र० शासन से सम्पर्क करके 'मामुलिया' के इस अंक को प्रदेश के प्रत्येक हाई स्कूल, कालेज, लायब्रेरी और प्रोफेसर को प्राप्त कराइये ।

—डॉ० पूनमचंद तिवारी, ग्वालियर

⊙ विशाल वातायन

मामुलिया के माध्यम से आपने राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त पर बड़ी मूल्यवान् सामग्री दी है । इसमें गुप्त जी की मानवीय अन्तश्चेतना को कई रूपों में बड़े मनोयोगपूर्वक उभारा गया है । बहुत-सी सामग्री पहली बार प्रकट हुई है । इससे गुप्त जी के व्यक्तित्व और कृतित्व को विशाल वातायन मिला है ।

—डॉ० महेन्द्र भानावत, उदयपुर

⊙ सामाजिक सदाशयता

कुछ लेखों ने मुझे नई बातें सिखायीं । मेरा विनम्र विचार यह है कि राष्ट्रकवि की सामाजिक सदाशयता ईमानदार है और यह उनकी रचना का ऐसा पक्ष है, जो हमें आज भी राह दिखा सकता है ।

—डॉ० प्रेमशंकर, सागर

⊙ शोधार्थियों के लिए उपयोगी

इस अंक को बड़े श्रम के साथ तैयार कर आपने उसे संग्रहणीय बनाया है । श्रद्धेय गुप्त जी के जीवन तथा कृतित्व पर सामग्री का चुनाव तथा उसका सम्पादन आपने बड़े मनोयोग से किया है । आपने भविष्य के लिए एक अत्युत्तम ग्रंथ तैयार कर दिया है, जो सभी वर्गों के शोधार्थियों के लिए उपयोगी है ।

— प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी, सागर

⊙ अत्यन्त समृद्ध

मामुलिया का विशेषांक सचमुच अत्यन्त समृद्ध है । मैथिलीशरण पर लगभग सम्पूर्ण सामग्री इसमें है ।

— सरोज कुमार, इन्दौर

⊙ व्यक्तिगत संस्मरण नहीं

जितना देखता हूँ, रस मिलता है । थोड़े में बहुत-कुछ आपने दिया है । प्रसन्नता है कि व्यक्तिगत संस्मरण, जो कुछ-का-कुछ कहते हैं, नहीं हैं ।

—हरगोविन्द गुप्त, चिरगाँव (झांसी)

हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण निधि

जन्मशती स्मारिका कहने को तो स्मारिका या 'मामुलिया' का विशेषांक है, परन्तु वास्तव में यह राष्ट्रकवि के सम्बन्ध में एक ऐसा विशिष्ट ग्रन्थ बन गया है जिसमें उनकी रचनाएँ भी हैं, उनकी जीवनी भी है और उनकी कृतियों का विद्वानों द्वारा उचित मूल्यांकन है । आपने जितने कवियों द्वारा उन पर लिखवाया है जिसका प्रारम्भ श्री नर्मदाप्रसाद गुप्त की पूर्व रंग की कविता से हुआ है, वह भी एक विशेषता है । क्योंकि मैं समझता हूँ कि राष्ट्रकवि के

बारे में इतनी कविताएं एक साथ और कहीं नहीं छपीं। बुन्देलखण्ड कवियों की भूमि है और दद्दा बुन्देलखण्ड के गौरव थे। इस दृष्टि से आपको सफलता मिलना स्वाभाविक था। संस्मरण भी आपने बहुत अच्छे बटोरे हैं, चित्र भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, लेकिन उनके बारे में मेरा निवेदन यह है कि यदि वे आर्ट पेपर पर या आफसैट द्वारा मेप्लिथो कागज पर छापे जाते तो ज्यादा प्रभावशाली लगते। इसमें आपने राष्ट्रकवि के जिन अमूल्य पत्रों को और उनके गद्य साहित्य को एक स्थान पर रखकर उनके साहित्यकार की प्रतिभा को पूर्णता प्रदान की और यह सिद्ध किया है कि काव्य के बारे में प्रारम्भ से ही मैथिलीशरण का अपना मौलिक चिन्तन था। उन पर जो आलोचनात्मक लेख आपने प्रकाशित किये हैं, उनका अपना महत्त्व है। कहने का तात्पर्य यह कि भले ही इसके प्रकाशक ने मामुलिया नाम दिया हो, न यह अंक मामूली है और न इसकी सामग्री मामूली है। यह हिन्दी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण निधि है और मेरा आपसे अनुरोध है कि इसे स्मारिका न बनाकर स्थायी ग्रन्थ का रूप दिया जाये।

—जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी, नई दिल्ली

एक संग्रहणीय संदर्भकोश

बुन्देलखण्ड साहित्य की प्रतिनिधि पत्रिका मामुलिया का विशेषांक 'राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जन्मशती स्मारिका' बुन्देली धरती के गौरव राष्ट्रकवि गुप्त जी को समझने के लिए एक उपयोगी एवं संग्रहणीय संदर्भकोश है। यह केवल जन्मशती स्मारिका नहीं, अपितु गुप्त जी के अनेक ज्ञात, अज्ञात एवं अल्पज्ञात पहलुओं को उजागर करता 'श्रद्धांजलि ग्रन्थ' है। जन्मशती पर प्रकाशित सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांकों से अलग पहिचान बनाने वाला यह ऐसा दर्पण है, जिसमें गुप्त जी को अत्यन्त निकट से सर्वाङ्ग देखने का अवसर मिलता है।

'व्यक्ति खण्ड' में 'काव्यांजलि' भले ही सामान्य परम्परा में हो किन्तु संस्मरण निश्चय ही अभूतपूर्व हैं। उनकी जीवनसंगिनी, पुत्र, पुत्रवधू तथा निजी सेवक द्वारा बताये गये अनकहे नितांत निजी प्रसंगों के अतिरिक्त उनसे निकट जुड़े विशिष्ट साहित्यिक मनीषियों के अंतरंग संस्मरण एक नया इतिहास बनाते हैं। 'मैथिली काव्य मान-ग्रन्थ' की पर्याप्त किन्तु सारांशित जानकारी भी उपादेय बन पड़ी है। इसी खण्ड में गुप्त जी के अनेक दुर्लभ पत्रों में उनके कवि-व्यक्तित्व के नये आयाम देखने को मिलते हैं।

'साहित्य खण्ड' में गुप्त जी की व्यंग्य कविताओं तथा उनके गद्य-वैभव का सहज अलभ्य स्वरूप है। 'परख खण्ड' में हिन्दी के शीर्षस्थ समीक्षकों द्वारा एक नई दृष्टि से गुप्त जी के साहित्य का अनुशीलन किया गया है, जो न केवल सुधी पाठकों अपितु शोधार्थियों के लिए भी उपयोगी है। गुप्त जी के कई लोकप्रिय गीतों की स्वरलिपि से भी उनके काव्य को संगीतबद्ध करके प्रस्तुत करने वालों का काम आसान हो गया है।

श्री उर्मिल जी के एलबम से अधिकांश चित्र प्रकाश में आते रहे हैं, फिर भी उनका प्रस्तुतीकरण विशेष ढंग से किया गया है। चिन्तामणि व्यास द्वारा चित्रांकन अच्छा बन पड़ा है।

यदि इस अंक में दद्दा की जन्मभूमि चिरगाँव, ससुराल कालपी तथा बुन्देलखण्ड के उन अंचलों, जो उनके निकट से सम्बद्ध रहे, पर भी कुछ सामग्री होती तो स्मारिका का महत्त्व अपेक्षाकृत बढ़ जाता।

—अयोध्याप्रसाद गुप्त 'कुमुद', उरई

बुन्देली साहित्य, संस्कृति, कला, इतिहास और लोकजीवन-दर्शन की दिशा में त्रैमासिक 'मामुलिया' के इस विशेषांक के प्रकाशन में संपादक डॉ० नर्मदाप्रसाद को कितना श्रम करना पड़ा, मैं एक जिज्ञासु पाठक के नाते भली-भाँति विज्ञ हूँ। विशेषांक का स्वरूप देखकर लगता है कि संपादकीय श्रम पूरी-पूरी तरह सार्थक हो गया है।

यह विशेषांक प्रमुख रूप से तीन खंडों में विभाजित है—व्यक्ति खंड, साहित्य खंड और परख खंड। व्यक्ति खंड में काव्यांजलि के माध्यम से डॉ० मुंशीराम शर्मा 'सोम', डॉ० रामरतन भटनागर, तन्मय बुखारिया, भैयालाल व्यास, श्रीनिवास शुक्ल, डॉ० कमलेश, राजाराम त्रिपाठी और सीताराम गुप्त 'दिनेश' के श्रद्धा-सुमनों से सुरभित 'मामुलिया' में मुझे डॉ० पूरनचन्द श्रीवास्तव की बुन्देली रचना बड़ी मार्मिक लगी।

'का-का कइए' के गिरधारी (दद्दा का निजी सेवक) से लेकर पं० जवाहरलाल नेहरू की नजरों में डॉ० बल्देव की प्रस्तुति पढ़कर 'दद्दा' के अत्यन्त सहज, सरल और निरभिमानी व्यक्तित्व पर मैं क्या प्रत्येक पाठक अभिभूत हो उठेगा। 'विचार और पत्र रचना' अंश के द्वारा जो छोटी-छोटी सूचनाएँ मिलती हैं, वे बड़ी महत्त्वपूर्ण एवं वैचारिक अक्षय निधियाँ हैं। हम पाठकों को स्व० 'दद्दा' के सर्वाङ्गीण व्यक्तित्व का सच्चा स्वरूप समझने की दृष्टि से साहित्य खंड तीन भागों में विभाजित है—'दद्दा' की आरम्भिक व्यंग्य रचनाएँ

(१६०० के आस-पास) संकलन केशव रावत और संपादकीय, 'कहें मैथली खरी २' और 'गद्य गरिमा' संकलन डॉ० नर्मदाप्रसाद गुप्त जैसे बिन्दुओं से दद्दा की आरंभिक साहित्य-चिन्तन-धारा और लेखन में राष्ट्रीय चेतना के विविध पक्ष देखने को मिल जाते हैं। विशेषांक में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण खंड है 'परख'—देश के प्रतिष्ठित विद्वानों के विचारों का समागम स्व० राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के साहित्यिक अवदान पर केन्द्रित है। यह खंड 'दद्दा' के लेखन की विभिन्न दशा-दिशाओं का होकर उनके समग्र व्यक्तित्व पर एकाग्र हो जाता है, जिससे 'मामुलिया' का यह अंक एक पुष्ट, सशक्त और सम्पन्न ग्रंथ बन जाता है और जो शोधार्थियों और जिज्ञासुओं के श्रांत-क्लांत भटकाव को एक अन्तरालयुक्त विश्राम देता प्रतीत होता है। महादेवी वर्मा, डॉ० भगीरथ मिश्र, डॉ० रामविलास शर्मा, डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन', प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी, डॉ० प्रेमशंकर, डॉ० बलभद्र तिवारी, डॉ० कमलाप्रसाद और डॉ० नर्मदाप्रसाद गुप्त जैसे विद्वानों के विविध आयामी निबन्ध 'दद्दा' की साहित्य-साधना को यथातथ्य विश्लेषित करते हैं। उससे एक ही दृष्टि में उनके साहित्य का सर्वाङ्गरूप स्थापित होता चला जाता है। पाठकों के मानस में इसका अर्थ यह नहीं है कि 'दद्दा' को अब विवेचित होने की आवश्यकता नहीं रही। नव्य चिन्तन की कुछ और श्रेष्ठतर गुंजायशें अब भी शेष हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण संस्मरण अब भी यत्र-तत्र बिखरे हैं।

विविधा अंश में, दो गीतों का बुन्देली अनुवाद और चार गीतों की स्वर-लिपियाँ पढ़कर लगता है 'दद्दा' की सारी रोम रचनाओं की स्वर-लिपियाँ एक जिल्द में बाँधी जानी चाहिए।

चित्र बोलते हैं—एक रोचक और सजावटी अंश है इस विशेषांक का। चिन्तामणि व्यास द्वारा तैयार किया गया दद्दा के जीवन के अंतिम दिनों का एक चित्र विशेषांक की शोभा है। एक और दुर्लभ चित्र संकलित है, जब 'दद्दा' की आयु १७ वर्ष थी और वे 'सरस्वती' मासिक के स्थापित कवि हो गये थे। शेष सभी चित्र भी अंक की गरिमा बढ़ाते हैं।

साधनहीनता, अर्थाभाव और अथक श्रम की स्थिति में बुन्देलखंड साहित्य अकादमी छतरपुर के अध्यक्ष एवं मामुलिया के सम्पादक डॉ० नर्मदाप्रसाद गुप्त का एक स्तुत्य प्रयास तो है ही, साथ ही, स्व० राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त 'दद्दा के जीवन-वृत्त के सर्वाङ्गीण पक्षों को समझने-विचारने के प्रयोजन में यह विशेषांक संग्रहयोग्य निधि है।

—केशव रावत, खिमलासा

एक उत्तम संकलन

१

'मामुलिया' का पहला अंक देखने के बाद मैंने कामना की थी कि यह मुंशी प्रेमचन्द जी के 'हंस' अथवा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की 'सरस्वती' जैसा व्यक्तित्व प्राप्त करे। मुझे प्रसन्नता हो रही है कि मेरी कामना बहुत वेग से न सही, बहुत धीरे-धीरे ही सही, फलीभूत हो रही है। अपने छोटे-से जीवन-काल में 'मामुलिया' ने इस अंचल के बिखरे हुए साहित्यिक कोष को तरतीब देने की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। सत्साहित्य के कठोर मानदण्डों का उपयोग करने पर निश्चय ही कोई वस्तुनिष्ठ आलोचक यह कहेगा कि इस महत्त्वपूर्ण योगदान के दौरान, इस महत्त्वपूर्ण योगदान के सिलसिले में, बहुत-कुछ महत्त्वहीन और निरर्थक भी सामने लाया गया है। वही वस्तुनिष्ठ आलोचक यह मानने को भी विवश है कि इस छोटी-सी यात्रा में 'मामुलिया' निरंतर और-और सार्थकता ग्रहण करती जा रही है।

'राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जन्मशती स्मारिका' के उपशीर्षक के साथ इस पत्रिका का जो नया अंक निकला है वह अब तक के अंकों में श्रेष्ठतम कहा जा सकता है। स्व० राष्ट्रकवि इस समूचे क्षेत्र में जितने अधिक लोकप्रिय हैं शायद उतने ही अधिक अपरिचित भी हैं। इस अपरिचय का कारण सम्भवतः मैथिलीशरण जी का इस बुन्देलखण्ड का निवासी होना है। घर के आदमी को ध्यान से देखने की, उसकी पहचान करने की क्या जरूरत है, उसे हम पहचानते तो हैं। दिन-रात ही तो देखते हैं। अपने पास के आदमी को ध्यान से देखने की जरूरत नहीं महसूस की जाती। इस बुन्देलखण्ड का इस महान् स्वाधीनता सेनानी के प्रति यही नजरिया है। तो फिर उनकी लोकप्रियता क्यों?

स्व० राष्ट्रकवि की इस क्षेत्र में असाधारण लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण वे स्वयं हैं, उनकी कविताएँ हैं। उनकी कविताओं ने स्वाधीनता संग्राम के दौर में जन-जन की जिह्वा में स्थान प्राप्त कर लिया था। वह अगली पीढ़ी

को भी हस्तांतरित हो गई है। उनकी लोकप्रियता का एक दूसरा कारण उनके असंख्य रिश्तेदार हैं। जिसको जहाँ अवसर मिलता है कहीं-न-कहीं से वह स्व० राष्ट्रकवि के साथ अपना रिश्ता जोड़ लेता है। उनकी जयंती आयोजित कर लेता है, प्रतिमा स्थापित कर लेता है। यह वर्ग उनको जानने-समझने में दिलचस्पी नहीं रखता। यह उनकी पूजा करता है और पूजा करने की ही सीख भी देता है। यह राष्ट्रकवि को लोकप्रिय बनाने में काफी सहायक रहा है। लोकप्रियता और अपरिचय का यह द्वंद्व ही बुन्देलखण्ड के साहित्य-प्रेमियों और स्व० श्री मैथिलीशरण जी गुप्त के साहित्य के आपसी सम्बन्धों की अंतर्वस्तु है।

इस द्वंद्व के बीच, बुन्देलखण्ड की इस लोकप्रिय विभूति को जानने, पहचानने और समझने के लिए पर्याप्त सहायक सामग्री 'मामुलिया' के इस स्मारिका अंक में संगृहीत की हुई है। पत्रिका में 'व्यक्ति-खंड' 'साहित्य-खंड' 'परख-खंड' 'विविधा' और 'चित्र बोलते हैं' नाम के ५ उपशीर्षक हैं। 'व्यक्ति-खंड' को पुनः 'काव्यांजलि' 'संस्मरण' 'विचार' और 'पत्र रचना' के रूप में खंडबद्ध किया गया है। इसके पूर्व नर्मदाप्रसाद गुप्त की और स्व० मैथिलीशरण जी गुप्त की एक-एक कविता है।

'काव्यांजलि' सम्भवतः इस संकलन का सबसे कमजोर हिस्सा है। किसी व्यक्ति पर कविता लिखना महाकवियों के लिये भी एक दुष्कर कार्य होता है। भौतिक रूप से किसी का सान्निध्य ग्रहण किये बिना उसके प्रति कविता का 'फूटना' असंभव-सा है। कविता जब स्वयं नहीं फूटती तब वह सायास लिखी जाती है और कविता जब प्रयासपूर्वक लिखी जाती है तब वह काव्य विकृति ही अधिक होती है। इस उपखंड में संकलित कोई भी कविता भावावेश से ओत-प्रोत नहीं है जो कविता का प्रथम लक्षण है। तमाम तरीके से श्रेष्ठ विशेषणों की लड़ियाँ लगी होने के बावजूद संकलित कविताओं में से एक भी पाठक के मर्मस्थल का स्पर्श नहीं कर पाती। पत्रिका के लक्ष्य की दृष्टि से यह अंश आवश्यक भी नहीं था। इन्हीं महानुभावों से गद्य में यह लिखवाया जाता कि उन्होंने स्वर्गीय राष्ट्रकवि से क्या प्रभाव व सीख ग्रहण की है तो सम्भवतः पत्रिका के पाठकों को अधिक लाभ हुआ होता। जैसा कि मैंने पत्रिका की अब तक की यात्रा के सम्बन्ध में अपनी राय व्यक्त की है, इस अंक में भी ऐसी सामग्री है जो किसी बेचारे लेखक-कवि का उद्धार करने के मानवीय नजरिये के कारण प्रकाशित की गयी हैं। 'काव्यांजलि' अंश इसका प्रमाण है।

इसके ठीक बाद अत्यन्त मूल्यवान् उपखंड है 'संस्मरण' का। तमाम क्षेत्रों के इतिहास-पुरुषों के संस्मरण एक से बढ़कर एक समझी जाने वाली विभूतियों के द्वारा लिये गये हैं। स्व० श्री गुप्त के संस्मरण भी बड़ी-बड़ी हस्तियों के द्वारा लिये गये हैं। यहाँ पर संकलित संस्मरणों की खासियत यह है कि ये उन लोगों द्वारा लिये गये हैं जिनके लिये स्व० राष्ट्रकवि मात्र एक साधारण सांसारिक इन्सान थे। स्व० श्री गुप्त की धर्मपत्नी, उनकी पुत्रवधू, उनके पुत्र और निजी सेवक के अतिरिक्त कुछ ऐसे व्यक्तियों के संस्मरण दिये गये हैं जिनसे स्व० राष्ट्रकवि की आकस्मिक मुलाकातें हुईं जो उनके निजी जीवन और व्यक्तित्व की एक झलक मात्र देख सके।

इन संस्मरणों द्वारा स्व० राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के जीवन-दर्शन के अनेक अज्ञात पहलू उद्घाटित होते हैं। श्री गुप्त के विषय में तरह-तरह की भ्रांतियाँ हिन्दी-जगत् में सायास फैलाई गयीं। मसलन उनके वैष्णव आदर्शों को बहाना बनाकर उन्हें हिन्दू पुनरुत्थानवादी, वर्ण-व्यवस्था में आस्था रखने वाले सामाजिक दम्भ के सहभागी के रूप में पेश किया गया। लोगों ने इसे स्वीकार कर लिया। स्व० श्री गुप्त के राजनीतिक सहयोगियों और उनके अति उग्रवादी आलोचकों दोनों ने ही इन भ्रांतियों के उद्भव और विकास में समान भूमिका निभाई है।

पहल राष्ट्रकवि के समर्थकों की ओर से हुई। इन लोगों ने वास्तविकता के विपरीत यह सिद्ध करना चाहा कि श्री गुप्त अपने युग के श्रेष्ठतम और महानतम कवि हैं। 'राष्ट्रकवि' का अलंकरण मिल जाने के बाद तो ये समर्थक हठपूर्वक यह घोषणा करने लगे कि श्री गुप्त प्रसाद, निराला से ही नहीं रवीन्द्रनाथ टैगोर और सुब्रह्मण्यम भारती से भी ऊँचे दर्जे के कलाकार थे। गुप्त जी की अटूट देशभक्ति के प्रति हार्दिक सम्मान के बावजूद यह स्वीकार करना होगा कि ऊपर की स्थापना सही नहीं है। स्वयं श्री गुप्त इस वास्तविकता से परिचित थे। इस मिथ्या प्रचार ने वास्तविक कला-प्रेमी समाज में स्वाभाविक रूप से ही प्रतिकूल प्रभाव डाला। सजग और विश्वसनीय समझे जाने वाले समीक्षकों ने कलात्मक सत्य की रक्षा के लिए स्व० श्री गुप्त के साहित्य व विचारों में हिन्दू साम्प्रदायिकता और जातिगत द्वेषग्रस्तता का आरोप लगाया। पवित्र धर्माचरण और साम्प्रदायिक आचरण के बीच की सीमा-रेखा बहुत बारीक होती है। इस रेखा को ढँक देना कितना आसान होता है इसका जीता-जागता उदाहरण गोस्वामी तुलसीदास हैं। उनके जैसा सार्वभौमिक मानववादी तक साम्प्रदायिक और जातिवादी होने के कलंक से

मात्र इसलिए नहीं बच सका क्योंकि उसके मानववाद का बाह्यावरण धर्म और भक्ति का था।

ये छोटे-छोटे संस्मरण श्री गुप्त के वास्तविक मानवतावादी व्यक्तित्व का परिचय देते हैं। वे कतई कट्टरवादी नहीं थे। अपने नियमित व्यवहार में वे किसी के भी साथ बैठकर भोजन कर सकते थे, अपने से छोटी आयु के किसी भी व्यक्ति को सार्वजनिक रूप से नमन कर सकते थे, औरतों के रसोई का सीमित दायरा तोड़कर व्यापक सामाजिक शिक्षा ग्रहण करने देने के पक्षपाती ही नहीं थे—अपने परिवार के बीच इस दिशा में निरंतर सचेष्ट भी रहते थे। आत्म-संस्कार को स्वयं अपने लिये ही नहीं, समस्त मानव प्राणियों के लिये आवश्यक मानते थे। ये संस्मरण स्व० राष्ट्रकवि के व्यक्तित्व को नहीं, उनके साहित्य को भी नये सिरे से समझने में सहायक हो सकते हैं।

ठीक ऐसे ही मूल्यवान् वे पत्र हैं जो 'पत्र-रचना' नामक उपखंड में संकलित हैं। इन पत्रों से श्री गुप्त की बहुविध चेष्टाओं और रुचियों का पता चलता है। विशेष रूप से श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी को लिखा गया 'विशाल भारत' में छपी साकेत की समीक्षा से सम्बन्धित पत्र एक साथ श्री गुप्त के मानस के अनेक कोमल पहलुओं का उद्घाटन करता है। यह पत्र कुछ-कुछ इसी तरह के एक अन्य ऐतिहासिक साहित्यिक विवाद की याद दिला देता है जिसका जिक्र डॉ० रामविलास जी शर्मा ने 'निराला की साहित्य साधना' में 'भावों की भिड़ंत' के नाम से किया है।

प्रसंगवश यहाँ बता दिया जाना चाहिये कि एक समीक्षात्मक लेख में निराला जी पर आरोप लगाया गया था कि उन्होंने (निराला जी ने) अपनी कविताओं के लिए श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर से भावों की चोरी की है। इस पत्र को पढ़कर ऐसा लगता है कि 'साकेत' पर भी कुछ इसी तरह से भावों की चोरी का आरोप स्व० श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने लगाया है और गुप्त जी उसका स्पष्टीकरण दे रहे हैं।

इस पत्र को पढ़कर स्व० श्री मैथिलीशरण जी गुप्त के तद्विषयक अत्यन्त सुलझे हुए विचार जानने को मिलते हैं। वे गोस्वामी तुलसीदास और मानस के साथ मैथिलीशरण और साकेत की तुलना को उचित नहीं मानते। समीक्षक को ऐसा करने के लिए शिशुवत् धन्यवाद देते हैं। इसे साहित्यिक वाद-विवाद का एक शिष्ट और श्रेष्ठ नमूना कहा जा सकता है। बिना किसी दुर्भाव के समीक्षक की गलतियों की ओर संकेत करते हुए अंत में यह भी

लिखा कि 'आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि यदि मुझसे लिखने में कोई भूल हो गई हो तो नेह के नाते क्षमा करें।' दूसरे पत्र भी कवि के अंतर्जगत् को जानने-समझने में सहायक हैं।

'साहित्य-खंड' में गुप्त जी की वे रचनाएँ संगृहीत हैं जो या तो अप्रकाशित हैं अथवा जो सम्पादक के शब्दों में, 'प्रकाशित किन्तु उपेक्षित' रही आयी हैं। अनेक पाठकों के लिए स्व० राष्ट्रकवि का लिखा हुआ व्यंग्य एक नयी वस्तु हो सकता है—यद्यपि उनकी प्रमुख कृतियों में भी हास्य और विनोद भरा पड़ा है, कहीं-कहीं श्रेष्ठ व्यंग्य भी है। साहित्य खंड की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना 'काव्य प्रभाकर की आलोचना' नामक समीक्षात्मक निवन्ध है जो गुप्त जी के रीति-विरोधी स्वभाव को साक्षात् सामने ला देता है। इस निबन्ध के विषय में आचार्यवर डॉ० रामविलास शर्मा का कहना है कि 'काव्य प्रभाकर की आलोचना उनके विवेचनात्मक गद्य की मिसाल है।' इस निबन्ध में गुप्त जी की साहित्य सम्बन्धी और साहित्यिक समालोचना सम्बन्धी मान्यताएँ देखने को मिलती हैं। डॉ० रामविलास शर्मा का यह कथन शत-प्रतिशत सही है कि "द्विवेदी जी के साथ रीतिवाद विरोधी अभियान के प्रसंग में मैथिलीशरण गुप्त का भी उल्लेख होना चाहिए।" गुप्त जी की काव्य और साहित्य विषयक मान्यताएँ लगभग वही थीं जो आचार्य शुक्ल की थीं और लोक-मंगल की भावना जिनका नाभि-केन्द्र है।

'हिन्दी कविता किस ढंग की हो' शीर्षक निबन्ध भी गुप्त जी के अपने साहित्यिक दृष्टिकोण का उद्घाटन करता है। 'कला', 'हिन्दी लेखक के कर्तव्य' तथा अन्य निबन्ध भी सम्भवतः पहली बार हिन्दी के साधारण पाठक समुदाय को पढ़ने को मिलेंगे। एक कवि के रूप में श्री गुप्त का मूल्यांकन करने के लिये उनके इन सुष्ठु गद्यांशों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। वैसे भी 'गद्यं कवीनाम् निकषं बदंति' की उक्ति काफी पुरानी है।

'परख खंड' की भी लगभग सारी सामग्री उपयोगी है। डॉ० रामविलास शर्मा का निबन्ध आकार में भले ही छोटा है मगर गुप्त जी के सम्पूर्ण साहित्यिक-सांस्कृतिक-सामाजिक अवदान का निचोड़ पेश करता है। चाहे आजादी की लड़ाई हो, चाहे साहित्य का कोई मूल्य-प्रसंग हो दद्दा उसे सर्व-साधारण के हक में हल करना चाहते थे। डॉ० रामविलास शर्मा ने गुप्त जी की जनसाधारण के प्रति पक्षधरता को उनके साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक व्यक्तित्व के मेरुदण्ड के रूप में ठीक ही रेखांकित किया है। वे

कहते हैं, "गुप्त जी जगह-जगह इन (जिन तक नायिका भेदी कविता कभी नहीं पहुँच सकती) सर्वसाधारण को ले आते हैं मानो काव्यशास्त्र के सहृदय मर्मज्ञों के स्थान पर वह अपढ़ गँवारों को प्रतिष्ठित करना चाहते हों। रसवाद के आधुनिक भाष्यकारों के लिए सर्वसाधारण की यह चर्चा रसभंग करने वाली है।"

लगे तो लगे, डॉ० रामविलास शर्मा के ही शब्दों में, "उस समय दद्दा की विचारधारा ऐसी ही थी कि वह कविता उनके लिये किसी काम की न थी जिसे पढ़कर थोड़े से विद्वज्जन भले ही अपना मनोरंजन कर लें पर सर्व-साधारण को उससे बहुत कम लाभ पहुँचे।" यह भारतीय जनता के साम्राज्य-वाद विरोधी और सामन्तविरोधी संघर्ष की साहित्यिक अनुगूंज है। गुप्त जी के इसी प्राण तत्त्व की मीमांसा डॉ० कमला प्रसाद ने भी अपने निबन्ध में की है। यह निबन्ध भी इस संकलन के मूल्य में वृद्धि करने वाला है। इसमें गुप्त जी की प्रखर जातीय चेतना को रेखांकित किया गया है जो प्रकारांतर से सर्व-साधारण के साथ रहने का ही परिणाम है। 'परख खंड' के अन्य निबन्ध भी गुप्त जी के साहित्य के किसी-न-किसी मूल्यवान् पक्ष को उद्घाटित करते हैं। डॉ० नर्मदाप्रसाद गुप्त ने अपने विस्तृत निबन्ध में गुप्त जी के साहित्य और व्यक्तित्व का उपयोगी विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

कतिपय दुर्लभ चित्रों और स्व० राष्ट्रकवि के कुछ गीतों की स्वर-लिपि ने संकलन को और भी आकर्षक बना दिया है। गुप्त जी के साहित्य के शोध-कर्त्ताओं और अन्य सुधी पाठकों के लिये निश्चय ही यह संकलन अत्यन्त लाभ-दायक होगा। 'मामुलिया' का यह अंक मामूली नहीं है।

—प्रो० प्रमोद पाण्डेय, छतरपुर

मध्यप्रदेश में अधिकार अभियान

आबंटित जमीन पर असल कब्जा दिलाने का संकल्प

- ☐ प्रदेश में जिन जरूरतमंद लोगों को सरकार ने अभी तक विभिन्न कार्यक्रमों के अन्तर्गत जमीन के पट्टे दिये हैं, उन्हें जमीन पर असल कब्जा दिलाने के लिए पूरे प्रदेश में अधिकार अभियान। एक साल के भीतर पक्के तौर पर जमीन का कब्जा दिलाया जायेगा।
- ☐ इस अभियान के अन्तर्गत जिला कलेक्टर, जिले के हर गाँव का सर्वेक्षण कर ऐसे लोगों का पता लगायेंगे, जिन्हें जमीन या भूखंड आवंटन के बाद वास्तविक कब्जा नहीं मिला है अथवा कब्जा मिलने के बाद उन्हें आबंटित भूमि से गैरकानूनी तरीके से बेदखल कर दिया गया है।
- ☐ आबंटित भूमि पर कब्जा दिलाने में सहूलियत के उद्देश्य से भूराजस्व संहिता में संशोधन का अध्यादेश जारी कर तहसीलदार को यह अधिकार दिया गया है कि वह आवेदन पत्र मिलने पर अथवा खुद अपनी ओर से भूमि के वास्तविक हकदार को कब्जा दिला सकेंगे।
- ☐ तहसीलदार के आदेश पर बेजा कब्जा न छोड़ने पर या कब्जा दिलाने की कार्रवाई में किसी प्रकार की बाधा पैदा करने वाले को अदालत से तीन वर्ष तक की जेल अथवा जुर्माना या दोनों दंड का प्रावधान।
- ☐ अधिकार अभियान के तहत आबंटित भूमि का कब्जा दिलाने के साथ ही इन वर्गों को उनके अधिकारों के प्रति जाग्रत भी किया जायेगा।
- ☐ जमीन का पट्टा चाहे खेती के लिए हो या मकान के लिए। कब्जा न मिलने की शिकायत तहसीलदार, एस० डी० ओ० या जिला कलेक्टर से की जा सकती है।

अधिकार अभियान — गरीबों के हकों की पूरी हिफाजत

अभिनव प्रकाशन

- बुन्देली फागकाव्य : एक मूल्यांकन, मूल्य रु० २५.००
  फागसाहित्य के विविध पक्षों को उजागर करने वाले १४ शोध-लेखों का संग्रह—डॉ० भगीरथ मिश्र
- आल्हखण्ड : शोध और समीक्षा, मूल्य रु० ४०.००
  विशिष्ट लेखों का संग्रह जो न केवल देश के इतिहास पर प्रकाश डालेगा, वरन् साहित्य में उसके असंदिग्ध महत्त्व को प्रतिपादित करेगा—डॉ० रामकुमार वर्मा
- लोककवि ईसुरी और उनका साहित्य, मूल्य रु० ४०.००
  लोककवि ईसुरी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर इतनी सामग्री एवं सर्वाङ्गपूर्ण अध्ययन हिन्दी में पहली बार—कलावार्ता
- मध्यदेशीय लोकसंस्कृति, मूल्य रु० ३०.००
  इस प्रकाशन से लोक साहित्य और संस्कृति को नई दिशा मिलेगी —प्रो० श्यामाचरण दुबे
- राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की साहित्य-साधना, मूल्य रु० ६०.००
  देश के पच्चीस-तीस प्रमुख विद्वानों द्वारा प्रशंसित प्रामाणिक तथ्यों पर आधारित ग्रन्थ
- विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल, मूल्य रु० १२५.००
  डॉ० के० एल० अग्रवाल द्वारा इस अंचल के भौगोलिक इतिहास को साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक साक्ष्यों से प्रस्तुत करने का सराहनीय प्रयास—डॉ० आर० के० शर्मा

मामुलिया—त्रैमासिक, वार्षिक सहयोग रु० २५ व्यक्तिगत, रु० ३० संस्थागत

- ☐ पत्रकारिता के इतिहास में एक मील का पत्थर-बनारसीदास चतुर्वेदी
- ☐ सांस्कृतिक प्रतिमान का प्रतीक—डॉ० भगीरथ मिश्र
- ☐ उपयोगी सामग्री—राजेन्द्र अवस्थी/अत्यन्त महत्त्वपूर्ण केदारनाथ अग्रवाल/दीर्घजीवी—नई दुनिया/नयी सार्थकता—डॉ० प्रेमशंकर/सर्वोत्तम हिन्दी डाइजेस्ट—नवीन दुनिया.

तार : "हिन्दीसंघ"
फोन नं० : ३३१६८२०

अखिल भारतीय हिन्दी संस्था संघ

३४, कोटला मार्ग, नई दिल्ली -११० ००२

Akhil Bharatiya Hindi Sanstha Sangh

34, Kotla Marg, New Delhi-110 002

(An All India Federation of Voluntary Hindi Organisations Recognised By The Govt. of India)

अध्यक्ष : गंगाशरण सिंह, डी० लिट्०
सचिव : रामलाल परीख
कोषाध्यक्ष : शंकरराव लोढे

क्रमांक : २३/८८-८६/३१३
दिनांक : ८.८. १६८८

प्रिय नर्मदाप्रसाद जी,

मेरे पटना के पते पर भेजा हुआ मामुलिया का दद्दा के सम्बन्ध में विशेषांक मुझे अभी प्राप्त हुआ। स्वयं कुछ नहीं लिख पा सकने के लिए मुझे खेद है। मैं लज्जित हूँ। मेरे स्वास्थ्य की जो हालत है और थी, उसके चलते मेरी असमर्थता को देखते हुए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

मामुलिया का अंक दद्दा के सम्बन्ध में निकले अन्य विशेषांकों और स्मृति ग्रन्थों से भिन्न प्रकार का है। इसमें आपने जो मौलिकता दिखलाई, उसके चलते यह अधिक उपयोगी और संग्रहणीय हो गया है। आपका यह कार्य दद्दा के स्मृति दर्पण के कार्यक्रम में लकीर से हटकर एक हृदयग्राही प्रयास है। मैं इस अवस्था में नहीं हूँ कि इसकी विशेषताओं के सम्बन्ध में तफसील से लिख सकूँ। इस अभिनव प्रयास और कार्य के लिए आपको हार्दिक बधाई।

सद्भावना के साथ
गंगाशरण सिंह

श्री नर्मदाप्रसाद गुप्त,
बुन्देलखण्ड साहित्य एकेडेमी,
छतरपुर (मध्यप्रदेश)